5·2

USEFUL FOR ALL STUDENTS
READING IN ANY UNIVERSITY IN INDIA

*FOR*

**B. A. PASS & HONOURS STUDENTS**

# RAGHUVAMŚAMAHĀKĀVYAM

# रघुवंशमहाकाव्यम्


**DR. KIRTYANAND 'PRACHETA' SHASHTRI**
Professor, Sanskrit Department
G. D. College, Begusarai



ALKA PRAKA[illegible]

महाकवि कालिदासकृतं

# रघुवंशमहाकाव्यम्

[श्लोक के साथ अन्वय, शब्दार्थ भाषानुवाद, संस्कृत-व्याख्या,]
अर्थ, टिप्पणी दिया हुआ है।

( त्रयोदशः सर्गः )

डॉ० कीर्त्यानन्द 'प्रचेता' शास्त्री
एम ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्
साहित्य-व्याकरणाचार्य (यू० पी०, बिहार)
साहित्यलंकार, विद्यारत्न ( द्वय )
प्रो० संस्कृत विभाग
स्नातकोत्तर–केन्द्र
गणेशदत्त महाविद्यालय, बेगूसराय



अलका प्रकाशन
H.O. खजान्ची रोड-पटना
B.O. बेकापुर-मुंगेर

प्रकाशक

अलका प्रकाशन

*खजांची रोड, पटना
*बेकापुर, मुंगेर





मूल्य : 9.00 (नौ रुपये मात्र)



मुद्रक :
नोवेल्टी प्रेस, बेकापुर, मुंगेर

गुरुवर

**डॉ० शक्तिधर झा**

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रो० संस्कृत विभाग

ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभङ्गा

के

**पावन पाणि-पद्मों**

**में**

**सादर समर्पित !**

'प्रचेता'

मैंने डॉ० कीर्त्यानन्द प्रचेता द्वारा की गयी कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य की व्याख्या एवं भाषानुवाद का आद्यन्त अवलोकन किया। इनकी व्याख्या एवं अनुवाद की भाषा शैली प्रांजल एवं विषयानुकूल है। इन्होंने अपनी सरल संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद के माध्यम से रघुवंश महाकाव्य का रसास्वादन सर्व साधारण व्यक्तियों के लिए भी सुगम एवं बोधगम्य बना दिया है। यह कृति डॉ० प्रचेता के श्रम एवं अध्यवसाय का पूर्णतः परिचायक है।

मुझे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि संस्कृत एवं हिन्दी भाषा साहित्य के प्रेमी सुधीजन इस कृति को हृदय से अपनायेंगे। मैं डॉ० प्रचेता को शुभकामनापूर्ण आशीर्वाद देता हूँ और उनसे आग्रह है कि वे ऐसे अन्य संस्कृत ग्रन्थों का भी व्याख्यात्मक अनुवाद संस्कृत-जगत् के समक्ष प्रस्तुत कर धन्यवाद के भागी बनें।

डॉ० परमानन्द झा शास्त्री
भू० पू० प्रतिकुलपति-कुलपति
का० सिंह संस्कृत वि० वि०, दरभंगा
सम्प्रति—अध्यक्ष
बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड
पटना

# रघुवंशमहाकाव्यस्य त्रयोदशसर्गस्य

## श्लोकानुक्रमणिका

## प्रश्नोत्तर



महाकविकालिदासविरचितम्

# रघुवंशमहाकाव्यम्

## (त्रयोदशः सर्गः)

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥१॥

**अन्वय**—अथ गुणज्ञः स रामाभिधानः हरिः शब्दगुणम् आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः रत्नाकरं वीक्ष्य जायां मिथः इति उवाच ।

**शब्दार्थ**—अथ—इसके बाद, गुणज्ञः—गुणज्ञाता, सः रामाभिधानः हरिः—वे राम नामक भगवान् विष्णु, शब्दगुणम्—शब्दगुण वाले, आत्मनः पदम्—अपने (विष्णु के) पद को अर्थात् आकाश को, विमानेन—(पुष्पक) विमान से, विगाहमानः—रौंदते हुए, पार करते हुए, रत्नाकरम्—समुद्र को, वीक्ष्य—देख कर, जायाम्—पत्नी (सीता) को, मिथः—एकान्त में, इति—यह, उवाच—बोले,

**भाषानुवाद**—इसके बाद गुणज्ञाता वे राम नामक भगवान् विष्णु, शब्दगुण वाले अपने विष्णुपद को अर्थात् आकाश को पुष्पक विमान से पार करते हुए, समुद्र को देखकर पत्नी सीता से एकान्त में यह बोले ।

**संस्कृत-व्याख्या**:—

श्लोकेऽस्मिन् रावणविजयानन्तरं पुष्पकविमानेन अयोध्यां प्रति आगच्छन् रामः समुद्रं दृष्ट्वा सीतां प्रति अवदत् ।

अथ—प्रस्थानानन्तरम्, गुणज्ञः—गुणज्ञाता, सः—असौ, रामाभिधानः—रामाख्यः, हरिः—विष्णु, शब्दगुणम्—शब्दः गुणः यस्य तत् आत्मनः—स्वकीयस्य, पदम्—विष्णुपदम् आकाशम् इत्यर्थः । विमानेन—पुष्पकविमानेन, विगाहमानः—गाहमानः, पारं कुर्वाणः इत्यर्थः । रत्नाकरम्—समुद्रम्, वीक्ष्य—दृष्ट्वा, जायाम्—पत्नीम्, सीताम् इत्यर्थः । मिथः—रहसि, एकान्ते इत्यर्थः । इति—अनेन प्रकारेण, उवाच—प्रोवाच ।

अथ उपजातिवृत्तम् ।

टिप्पणी—अथ—यह शब्द अव्यय तथा मङ्गलार्थक है। द्वादश एवं त्रयोदश सर्ग की कथावस्तु को जोड़ता भी है।

शब्दगुणम्—शब्दः गुणः यस्य स शब्दगुणः (बहुव्रीहि), तत्। भारतीय दर्शनशास्त्र के अनुसार 'शब्द' आकाश का धर्म या गुण है।

आत्मनः पदम्—अपने स्थान को अर्थात् आकाश को। आकाश को विष्णु का स्थान कहा गया है। अमरकोश में 'आकाश' का पर्याय 'विष्णुपद' भी दिया गया है। 'वियद्विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी' इत्यमरः। एक पौराणिक कथा के अनुसार—भगवान् विष्णु ने वामन का रूप धारणकर राजा बलि से तीन डग भूमि की मांग की थी। बलि दानवों का राजा था। उसे दान देने में तनिक भी हिचक न हुई। उसने तीन डग भूमि देने की स्वीकृति दे दी। भगवान् विष्णु ने एक डग में पृथिवी और दूसरे डग में अन्तरिक्ष को नाप लिया। शेष तीसरे डग में बलि की पीठ भी नाप ली।

'आत्मनः पदम्' से राम का सर्वसामर्थ्य सूचित होता है।

वीक्ष्य—वि + ईक्ष् + ल्यप्।

जायाम्—जायते अस्याम् इति जाया, तां जायाम्।

जन् + यक् + टाप् = जाया।

इस सर्ग में १ से लेकर ६७ वें श्लोक तक उपजाति छन्द हैं। इसका लक्षण है—"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।" अर्थात् जिस पद्य का कोई चरण इन्द्रवज्रा के लक्षण द्वारा तथा कोई चरण उपेन्द्रवज्रा के लक्षण द्वारा बना हो, उसे उपजाति छन्द कहते हैं। इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा प्रायः समान छन्द है। अन्तर केवल इतना ही है कि इन्द्रवज्रा का प्रथम वर्ण गुरु होता है और उपेन्द्रवज्रा का प्रथम वर्ण लघु होता है। इन्द्रवज्रा का लक्षण है—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।" अर्थात् प्रत्येक पाद में दो तगण, एक जगण और दो गुरुवर्ण। उपेन्द्रवज्रा का लक्षण है—"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।" अर्थात् प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और दो गुरुवर्ण।

इन्द्रवज्रा—

तगण तगण जगण गु. गु.

ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

उपेन्द्रवज्रा—

जगण तगण जगण गु. गु.

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

वैदेहि ? पश्याऽऽमलयाद् विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥२॥

अन्वय–वैदेहि । आमलयात् मत्सेतुना विभक्तं फेनिलं छायापथेन (विभक्तम्) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृतचारुतारम् आकाशम् इव अम्बुराशिं पश्य ।

शब्दार्थ—वैदेहि—हे सीते!, आमलयात्—मलयपर्वत तक, मत्सेतुना—मेरे द्वारा निर्मित पुल से, विभक्तम्—विभक्त, फेनिलम्—फेन से युक्त, छायापथेन—छायापथ से, आकाशगङ्गा से, (विभक्तम्—विभक्त), शरत्प्रसन्नम्—शरद् ऋतु के कारण निर्मल, आविष्कृतचारुतारम्—छिटके हुए सुन्दर तारों वाले, आकाशम् इव—आकाश के समान, अम्बुराशिम्—समुद्र को, पश्य—देखो ।

भाषानुवाद—हे सीते ! मलय पर्वत तक मेरे द्वारा निर्मित पुल से विभक्त और फेन से युक्त, आकाशगङ्गा से विभक्त शरद्ऋतु के कारण निर्मल तथा छिटके हुए सुन्दर तारों वाले आकाश के समान समुद्र को देखो ।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् रामः समुद्रं द्रष्टुं सीताम् अमथयत्—

वैदेहि—हे सीते !, आमलयात्—मलयगिरिपर्यन्तम्, मत्सेतुना—मदाल्या, विभक्तम्—द्विधाकृतम् फेनिलम्—फेनवन्तम्, फेनयुक्तम् इत्यर्थः । छायापथेन—आकाश-गङ्गाया, विभक्तम्, शरत्प्रसन्नम्—शरद्कालनिर्मलम्, आविष्कृतचारुतारम्—प्रकटितमञ्जुलनक्षत्रम्,

आकाशम्, इव—गगनम् इव, अम्बुराशिम्—समुद्रम्, पश्य—अवलोकय ।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो विद्यते ।

टिप्पणी—मत्सेतुना—मेरे द्वारा निर्मित पुल से । राम ने 'मत्' के प्रयोग से यह बतलाना चाहा कि समुद्र में पुल बाँधना टेढ़ी खीर है । पर, मैंने यह दुष्कर कार्य तुम्हारे लिए ही किया है ।

शरत्प्रसन्नम्—शरद्ऋतु के कारण स्वच्छ । शरदा प्रसन्नम् (तृतीया तत्पुरुष समास) ।

विभक्तम्—दो भागों में बँटा हुआ । वि+भज्+क्त ।

अम्बुराशिम्—अम्बूनां राशिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तम् ।

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं सङ्क्रमिते तुरङ्गे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥३॥

अन्वय—यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरङ्गे कपिलेन रसातलं सङ्क्रमिते (सति) तदर्थम् उर्वीम् अवदारयद्भिः नः पूर्वैः अयं परिवर्धितः किल ।

शब्दार्थ—यियक्षोः—(अश्वमेध) यज्ञ करने के इच्छुक, गुरोः—गुरु के अर्थात् पूज्य सगर के, मेध्ये तुरङ्गे—यज्ञीय घोड़े को, कपिलेन—कपिलमुनि के द्वारा, रसातलं सङ्क्रमिते सति—पाताललोक पहुँचा दिये जाने पर, तदर्थम्—उस घोड़े के लिए, अर्थात् उस घोड़े को खोज निकालने के लिए, उर्वीम्—पृथिवी को, अवदारयद्भिः—खोदने वाले, नः—हमारे, पूर्वैः—पूर्वजों ने अर्थात् सगर के साठ हजार पुत्रों ने, अयं (समुद्रः)—इस समुद्र को, परिवर्धितः किल—बढ़ाया है ।

भाषानुवाद—(अश्वमेध) यज्ञ करने के इच्छुक पूज्य सगर के यज्ञीय घोड़े को कपिल मुनि के द्वारा पाताललोक पहुँचा दिये जाने पर, उस घोड़े को खोज निकालने के लिए पृथिवी को खोदने वाले हमारे पूर्वजों ने इस समुद्र को बढ़ाया है ।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् महाकविकालिदासः रामस्य पूर्वजानां महिमानं प्रदर्शितवान् अस्ति। रामः सीताम् अभणत् यत् अस्माकं पूर्वजाः समुद्रं परिवर्धितवन्तः—

यियक्षोः—यष्टुमिच्छोः, गुरोः—पूज्यस्य, सगरस्य इत्यर्थः। मेध्ये—अश्वमेधार्हे, तुरङ्गे—घोटके, कपिलेन—कपिलमुनिना, रसातलम्—पातालम्, संक्रमिते सति—प्रापिते सति, तदर्थम्—अश्वान्वेषणार्थम्, उर्वीम्—पृथिवीम्, अवदारयद्भिः—खनद्भिः, नः—अस्माकम्, पूर्वैः—पूर्वजैः—सगरसुतैः इत्यर्थः। अयम्—समुद्रः, परिवर्धितः—संवर्धितः, किल—निश्चयेन।

अत्र सम्बन्धातिशयोक्तिरलङ्कारः।

टिप्पणी—कपिलेन—कपिलमुनि के द्वारा। विष्णुपुराण के अनुसार एक बार सूर्यवंशी राजा सगर ने सौ अश्वमेध करना आरम्भ किया। इससे इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा कि मेरी गद्दी छिनी जायेगी। अतः उसने अपनी गद्दी छिन जाने के भय से उस अश्वमेध के अश्व को चुराकर पाताल में तपस्या करते हुए कपिलमुनि के पास ले जाकर बाँध दिया। अश्व की खोज करते हुए साठ हजार पुत्रों ने कपिल मुनि के पास बंधे हुए घोड़े को देखकर आश्चर्य व्यक्त किया। उन्हें चोर समझकर सगर के प्रतापी पुत्र उनपर अति क्रुद्ध हो गये। मुनि की समाधि टूटने पर उनके क्रोधानल से वे साठों हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये।

रसातलम्—पाताल को। 'अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम्' इत्यमरः।

अवदारयद्भिः—खोदते हुए। अव+दृ+णिच्+लट्—शतृ=अवदारयन्तः, तैः।

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥४॥

अन्वय—अस्मात् (समुद्रात्) अर्कमरीचयः गर्भं दधति, अत्र वसूनि विवृद्धिम् अश्नुवते। असौ अबिन्धनं वह्निं बिभर्ति, अनेन प्रह्लादनं ज्योतिः अजनि।

शब्दार्थ—अस्मात्—इस समुद्र से, अर्कमरीचयः—सूर्य की किरणें, गर्भं दधति—गर्भ धारण करती हैं, अत्र—इस समुद्र में, वसूनि—रत्न, विवृद्धिम्—वृद्धि को, अश्नुवते—प्राप्त करते हैं, असौ—वह (समुद्र), अबिन्धनम्—जल के इन्धन वाली, वह्निम्—अग्नि को अर्थात् वडवाग्नि को, बिभर्ति—धारण करता है। अनेन—इस समुद्र से प्रह्लादनं ज्योतिः—आह्लादक ज्योति (चन्द्रमा), अजनि—उत्पन्न हुई।

भाषानुवाद—इस समुद्र से सूर्य की किरणें गर्भ धारण करती हैं, इस समुद्र में रत्न वृद्धि को प्राप्त करते हैं। वह जल रूप इन्धनवाली अग्नि को यानी वडवानल को धारण करता है, इससे आह्लादक ज्योति (चन्द्रमा) उत्पन्न हुई है।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् कविः समुद्रस्य महत्त्वं वर्णयति—

अस्मात्—समुद्रात्, अर्कमरीचयः—सूर्यकिरणाः, गर्भम्—वृष्टिम् इत्यर्थः। दधति—धारयन्ति, अत्र—समुद्रेऽस्मिन्, वसूनि—धनानि, विवृद्धिम्—संवृद्धिम् समृद्धिं वा, अश्नुवते—प्राप्नुवन्ति, असौ—समुद्रः, अबिन्धनम्—आपः जलानि इन्धनं दाह्यं यस्य तादृशम्, वह्निम्—अग्निम्; वडवानलम् इतिभावः। बिभर्ति—धारयति, अनेन—समुद्रेण, प्रह्लादनम्—आह्लादकम्, ज्योतिः—हिमांशुः, अजनि—जनितम्, उत्पादितम् इत्यर्थः।

टिप्पणी—अर्कमरीचयः गर्भं दधति—सूर्य की किरणें गर्भ धारण करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सूर्य की किरणें समुद्र से जल खींच कर उस जल को मेघ के रूप में परिवर्तित कर देती हैं। उसी जल के बरसने से वसुन्धरा शस्यश्यामला हो जाती है। इससे समुद्र का विश्वकल्याणकारित्व सिद्ध होता है।

अबिन्धनं वह्निं बिभर्ति—जलरूप इन्धन वाली अग्नि को अर्थात् वडवानल को धारण करता है। जल और अग्नि में स्वभावतः शत्रुता का भाव जागरित है। समुद्र अपने सहज शत्रु वडवानल को धारण कर

अपूर्वशरणगत रक्षा को सूचित कर रहा है। वस्तुतः समुद्र सब के लिए सब प्रकार से उपादेय है।

दधति—धारण करते हैं। धा + लट् (प्रथमपुरुष बहुवचन)।

अश्नुवते—प्राप्त करते हैं। अश्+लट् (प्रथम पुरुष बहुवचन)।

बिभर्ति—धारण करता है। भृ + लट् (प्रथमपुरुष एकवचन)।

प्रह्लादनम्—प्र + ह्लाद् + ल्यट् (अन)।

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥५॥

अन्वय—तां ताम् अवस्थां प्रतिपद्यमानं महिम्ना दश दिशो व्याप्य स्थितम् विष्णोः इव अस्य रूपम् ईदृक्तया वा इयत्तया अनवधारणीयम्।

शब्दार्थ—तां ताम् अवस्थाम्—उन-उन अवस्थाओं को, प्रतिपद्यमानम्—ग्रहण करते हुए, महिम्ना—महिमा से, दश दिशो व्याप्य—दसों दिशाओं में व्याप्त होकर, स्थितम्—स्थित, विष्णोः इव—भगवान् विष्णु के समान, अस्य रूपम् ईदृक्तया—इसका रूप ऐसा है अर्थात् इस समुद्र का रूप 'ऐसा है', वा—या, इयत्तया—'इतना है' अनवधारणीयम्—(इस तरह) निश्चय नहीं किया जा सकता है।

भाषानुवाद—उन-उन अवस्थाओं को ग्रहण करते हुए तथा महिमा से दसों दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित भगवान् विष्णु के समान इसका रूप ऐसा है अर्थात् इस समुद्र का रूप 'ऐसा है' या 'इतना है' इस तरह निश्चय नहीं किया जा सकता है।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन कविः समुद्रस्य विशालतां वर्णयति—

तां ताम्—अनेकाम्, अवस्थाम्—अक्षोभाद्यवस्थाम्, दशाम् इत्यर्थः। प्रतिपद्यमानम्—भजमानम्, महिम्ना—समुद्रपक्षे—विस्तारेण, विष्णुपक्षे—महतो भावः महिमा, तेन। दश दिशः—सर्वकाष्ठाः, व्याप्य—परिव्याप्य, स्थितम्—अवस्थितम्, विष्णोः इव—नारायणस्य इव, अस्य—एतस्य,

रत्नाकरस्य इत्यर्थः । रूपम्—स्वरूपम्, ईदृक्तया—एतादृशत्वेन, वा—अथवा, इयत्तया—एतावत्त्वेन, अनव—धारणीयम्—न अवधारणीयम्।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—तां ताम् अवस्थाम्—उस-उस अवस्था को। इसका प्रयोग समुद्र और विष्णु दोनों के पक्ष में हुआ है। समुद्र की अनेक अवस्थाएँ हैं—क्षुब्ध तथा शान्त होना आदि। विष्णु की अनेक अवस्थाएँ हैं—सत्व, रजस् और तमस्। इनसे क्रमशः वे पालन, सृष्टि तथा विनाश करते हैं। विष्णु के अनेक अवतारों—मत्स्य, कूर्म आदि को अवस्था कहते हैं।

व्याप्य—व्याप्त कर के। वि + आप् + ल्यप्।

स्थितम्—स्थित। स्था + क्त।

दिशः—द्वितीय विभक्ति, बहुवचन।

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ॥६॥

अन्वय—युगान्तोचितयोगनिद्रः पुरुषः लोकान् संहृत्य नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन धात्रा संस्तूयमान अमुम् अधिशेते।

शब्दार्थ—युगान्तोचितयोगनिद्रः—प्रलयकाल में योगनिद्रा को ग्रहण किये हुए, पुरुषः—भगवान् विष्णु, लोकान् संहृत्य—लोकों का संहार कर, नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन—नाभि से उत्पन्न कमल पर बैठे हुए, प्रथमेन धात्रा—प्रथम ब्रह्मा द्वारा, संस्तूयमानः—स्तुति किये जाते हुए, अमुम् अधिशेते—इस (समुद्र) में सोते हैं।

भाषानुवाद—प्रलयकाल में योगनिद्रा को ग्रहण किये हुए भगवान् विष्णु लोकों का संहार कर नाभि से उत्पन्न कमल पर आसीन प्रथम ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाते हुए इसी (समुद्र) में सोते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् महाकविः कालिदासः विष्णुना सह समुद्रस्य महत्त्वं वर्णयति—युगान्तोचितयोगनिद्रः—कल्पान्तपरिचितयोगनिद्र, पुरुषः विष्णुः इत्यर्थः।

लोकान्—भुवनानि, संहृत्य—विनाश्य, संहार कृत्वा इत्यर्थः। नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन—नाभ्युत्पन्नकमलाश्रयेण, प्रथमेन—आद्येन, धात्रा—पिता महेन, संस्तूयमानः—स्तूयमानः प्रार्थ्यमानः वा, अमुम्—इमम्, समुद्रम् इत्यर्थः। अधिशेते—स्वपिति।

अत्रोदात्तालङ्कारः

टिप्पणी—उक्त श्लोक में पौराणिक कथा परिलक्षित होती है। उसके अनुसार—युग के समाप्तिकाल में भगवान् विष्णु सभी लोकों का संहार कर समुद्र में शेषशय्या पर शयन करते हैं। उनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा विराजमान होते हैं। उनकी स्तुति करने पर भगवान् ब्रह्मा को नव सृष्टि करने का आदेश देते हैं।

संस्तूयमानः—स्तुति किया जाता हुआ। सम् + स्तु + शानच्।

पुरुषः—आदिपुरुष, विष्णु। पुरति अग्रे गच्छति इति पुरुषः। पुर् + कुषण्।

संहृत्य—संहारकर। सम् + हृ + ल्यप्।

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥७॥

अन्वय—पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगन्धाः महीध्राः शतशः शरण्यम् एनं परेभ्यः उपप्लविनः नृपाः धर्मोत्तरं मध्यमम् इव आश्रयन्ते।

शब्दार्थ—पक्षच्छिदा—पंखों को काटने वाले, गोत्रभिदा—इन्द्र के द्वारा, आत्तगन्धाः—गर्व का अपहरण किये गये, महीध्राः—पर्वत, शतशः शरण्यम्—सैकड़ों को शरण देने वाले, एनम् (आश्रयन्ते)—इस समुद्र का (उसी तरह) आश्रय ग्रहण करते हैं, (जिस तरह) परेभ्यः—शत्रुओं से, उपप्लविनः नृपाः—भयभीत राजा लोग, धर्मोत्तरं मध्यमम् इव—धर्मात्मा राजा का, आश्रयन्ते—आश्रम ग्रहण करते हैं।

भाषानुवाद—पंखों को काटने वाले इन्द्र द्वारा गर्व का अपहरण किये गये पर्वत, सैकड़ों को शरण देने वाले इस समुद्र का उसी तरह आश्रय ग्रहण करते हैं जिस तरह शत्रुओं से भयभीत राजालोग, धर्मात्मा मध्यम राजा का यानी तटस्थ राजा का आश्रय ग्रहण करते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

कवि समुद्रस्योत्कर्षं वर्णयति—

इन्द्रात् पराजिताः शतशः पर्वताः इमं समुद्रं शरण्यं समुपगताः ।

पक्षच्छिदा—तनूरुहच्छिदा, गोत्रभिदा—इन्द्रेण, आत्तगन्धाः—अपहृत-गर्वाः, महीध्राः—पर्वताः, शतशः—शतं शतम्, शरण्यम्—रक्षणसमर्थम्, एनम्—इमम्, समुद्रम् इत्यर्थः । परेभ्यः—शत्रुभ्यः, उपप्लविनः—भयवन्तः, नृपाः—राजानः, धर्मोत्तरम्—धर्मप्रधानम्, मध्यमम् इव—मध्यस्थराजानम् इव, आश्रयन्ते—समाश्रयन्ते, शरणं व्रजन्ति इत्यर्थः ।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो विद्यते

टिप्पणी—पक्षच्छिदा—पंखों को काटने वाले । पक्षं छिनत्ति इति पक्षच्छित्, तेन । पक्ष + छिद् + क्विप् ।

प्राचीनकाल में पर्वतों के पंख होते थे । वे जहाँ चाहते वहाँ उड़कर चले जाते थे । जहाँ वे बैठते थे वहाँ धन-जन का विनाश कर देते थे । अतः इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंख काट डाले । पर, मैनाक जैसे कुछ पर्वत भाग-कर समुद्र के अन्दर जा छिपे । मध्यमम्—मध्यमवाला,तटस्थ । उक्तश्लोक में समुद्र की तुलना मध्यम राजा से की गयी है । समुद्र का सहज गुण सदा एक समान रहता है । सैकड़ों पर्वत उसके अन्दर समा गये । यद्यपि उसका जल तट को लांघ कर चारों ओर फैल जाना चाहिए । पर, वह तटस्थ राजा की तरह है । तटस्थ राजा का यह गुण है कि शक्ति सम्पन्न होने पर भी वह दूसरों की भूमि को हड़पना नहीं चाहता है ।

आश्रयन्ते—आश्रय ग्रहण करते हैं । आ + श्रि + लट् (प्रथम पुरुष बहुवचन) ।

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥८॥

अन्वय—आदिभवेन पुंसा रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः प्रलय-प्रवृद्धम् अस्य अच्छम् अम्भः मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ।

शब्दार्थ—आदिभवेन पुंसा—आदिपुरुष (वराह) द्वारा, रसातलात्

—पाताल से, प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः—उद्धार की जाने वाली पृथिवी का, प्रलयप्रवृद्धम्—प्रलयकाल में बढ़ा हुआ, अस्य—इस समुद्र का, अच्छम्—स्वच्छ, अम्भः—जल, मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव—क्षणभर के लिए मुख का घूंघट बन गया।

भाषानुवाद—आदिपुरुष (वराह) द्वारा पाताल से उद्धार की जाने वाली पृथ्वी का प्रलय काल में बढ़ा हुआ इस समुद्र का स्वच्छ जल क्षणभर के लिए मुख का घूंघट बन गया।

संस्कृत-व्याख्या—

महाकवि कालिदासः प्रलयकाले समुद्रस्य जल-शोभां वर्णयति—आदिभवेन पुंसा—आदिवराहेण, रसातलात्—पाताललोकात् प्रयुक्तोद्वहन-क्रियायाः—कृतोद्धरणक्रियायाः, भुवः—पृथिव्याः, प्रलयप्रवृद्धम्—प्रलय-कालप्रवृद्धम्, प्रलयकाले वर्धमानम् इत्यर्थः। अस्य—एतस्य, समुद्रस्य इतिभावः। अच्छम्—निर्मलम्, अम्भः—जलम्,मुहूर्तम्—क्षणम्, वक्त्रा-भरणम्—लज्जारक्षणार्थं मुखावगुण्ठनम्, बभूव—अभवत्।

श्लोकेऽस्मिन् समासोक्तिरलङ्कारो विद्यते।

टिप्पणी—आदिभवेन पुंसा—आदि में उत्पन्न पुरुष (वराह) द्वारा। भगवान् ने वराहावतार ग्रहण किया था। वराहावतार में भगवान् ने पृथिवी का उद्धार किया था।

रसातलात्—पाताल से। अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम् इत्यमरः।

मुहूर्तवक्त्रावरणम्—क्षणभर के लिए घूंघट। आव्रियते अनेन इति आवरणम्। आ+वृ+ल्युट् (अन)। वक्त्रस्य आवरणम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), मुहूर्तं वक्त्रावरणम् (सुप्सुपा समास)।

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥६॥

अन्वय—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः तरङ्गाधरदानदक्षः असौ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिन्धूः स्वयं पिबति पाययते च।

**शब्दार्थ**—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः—(नदीरूप) स्त्रियों से अनन्य साधारण उपभोग करने वाला, तरङ्गाधरदानदक्षः—तरङ्ग रूप अधर को देने में कुशल, असौ—वह समुद्र), मुखार्पणेषु—मुख अर्पण करने में, प्रकृति-प्रगल्भाः—स्वभाव से धृष्ट (ढीठ), सिन्धूः—नदियों (के अधरों) को, स्वयं पिबति—स्वयं पान करता है, पाययते च—और (अपना अधर) पान कराता है।

**भाषानुवाद**—(नदीरूप) स्त्रियों से अनन्य साधारण उपभोग करने वाला और तरङ्ग रूप अधर को देने में कुशल यह समुद्र मुख अर्पण करने में स्वभाव से ही ढीठ नदियों के अधरों को स्वयं पान करता है और अपना अधर पान कराता है।

**संस्कृत-व्याख्या**—

कवि समुद्रस्य नदीनाञ्च परस्परं सम्मिलनस्य रुचिकरं वर्णनं करोति। समुद्रः नद्यश्च परस्परं आनन्दं प्रदानं कुर्वन्ति। वर्णनमिदं दृश्यताम्—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः—न अन्य सामान्यकलत्रवृत्तिः, तरङ्गाधरदानदक्षः—भङ्गाधरोष्ठदाननिपुणः, असौ—सः, रत्नाकरः इत्यर्थः। मुखार्पणेषु—आननार्पणेषु, चुम्बनदानेषु इतिभावः। प्रकृतिप्रगल्भाः—स्वभावधृष्टाः, सिन्धूः—नदीः, स्वयं पिबति—स्वयं पानं करोति, पाययते च—पानं कारयति च।

श्लोकेऽस्मिन् कविः समुद्रे नायकस्य नदीषु च नायिकायाः आरोपं कृतवान् अस्ति।

**टिप्पणी**—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः—जिसका स्त्री-भोग अन्य सामान्य पुरुष से बढ़कर है। कोई मनुष्य एक स्त्री से एक काल में ही भोग करता है। पर, यह समुद्र कई नदी रूप स्त्रियों से एक साथ भोग करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक साथ कई स्त्रियों का अधर पान करता है और अपना अधर पान कराता है। यही इसका अनन्य साधारणत्व है।

प्रकृतिप्रगल्भाः—स्वभाव से ढीठ। प्रकृत्या प्रगल्भाः प्रकृतिप्रगल्भाः (तृतीय तत्पुरुष समास)

पाययते—पिलाता है। पा + णिच् + लट्—ते।

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः सम्मीलयन्तो विवृताननत्वात् ।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहाण् ॥१०॥

अन्वय—अमी तिमयः विवृताननत्वात् ससत्त्वं नदीमुखम्भः आदाय सम्मीलयन्तः सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वन्ति ।

शब्दार्थ—अमी—ये, तिमयः—तिमि नामक मछलियाँ, विवृताननत्वात् —मुख के बहुत बड़ा होने के कारण, ससत्त्वम्—जन्तुओं सहित, नदी—मुखाम्भः—नदी के मुहाने के जल को, आदाय—लेकर, सम्मीलयन्तः—(जबड़ों को) बन्द करती हुई, सरन्ध्रैः शिरोभिः—छिद्रयुक्त मस्तकों से, जलप्रवाहान्—जल प्रवाहों को, ऊर्ध्वम्—ऊपर, वितन्वन्ति (फव्वारे की तरह) उछालती हैं ।

भाषानुवाद—ये तिमि नामक मछलियाँ मुख के बहुत बड़ा होने के कारण जन्तुओं सहित नदी के मुहाने के जल को लेकर (जबड़ों को) बन्द करती हुई छिद्रयुक्त मस्तकों से जल प्रवाहों को ऊपर (फव्वारे की तरह) उछालती हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—

तिमिमत्स्यस्य जल-क्रीडां वर्णयति—

अमी—एतो, तिमयः—मत्स्यविशेषाः, विवृतानत्वात् व्यातमुखत्वात्, ससत्त्वम्—मत्स्यादि प्राणिसहितम् सजीवम् इत्यर्थः । नदीमुखाम्भः—सरित्संगमसलिलम्, आदाय—गृहीत्वा, सम्मीलयन्तः—निमीलयन्तः, चञ्चुपुटानि संघटयन्तः इत्यर्थः । सरन्ध्रैः- सच्छिद्रैः शिरोभि—मस्तकैः- जलप्रवाहान्—सलिलधाराः, ऊर्ध्वम्—उपरि, वितन्वन्ति—विस्तारयन्ति । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः ।

टिप्पणी—तिमयः—तिमि नामक मत्स्यविशेष । सभवतः 'ह्वेल' मछली हो । 'ह्वेल' संसार का सबसे बड़ा जीव है । इस मछली के शरीर का परिमाण चार सौ कोस लम्बा बताया गया है ।

आदाय—आ + दा + ल्यप् ।

मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नन्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम् ॥११॥

अन्वय– सहसा उत्पतद्भिः मातङ्गनक्रैः द्विधा भिन्नान् समुद्रफेनान् पश्य । ये एषां कपोलसंसर्पितया कर्णक्षणचामरत्वं व्रजन्ति ।

शब्दार्थ—सहसा—अचानक,उत्पतद्भिः—उछलते हुए, मातङ्गनक्रैः — हाथीरूप वाले ग्रहों से, द्विधा भिन्नान्—दो भागों में विभक्त किये गये, समुद्रफेनान्–समुद्र के फेनों को, पश्य - देखो, ये—जो फेन, एषाम्–इन ग्राहों के, कपोलसंसर्पितया–कपोल (गाल) से लगने के कारण, कर्णक्षण-चामरत्वम्—क्षणमात्र कानों में चामरत्व को, व्रजन्ति—प्राप्त करते हैं अर्थात् चँवर बन जाते हैं ।

भाषानुवाद—सहसा उछलते हुए हाथी रूप वाले ग्राहों से दो भागों में विभक्त किये गये समुद्र के फेनों को देखो, जो फेन इन ग्राहों के कपोल से लगने के कारण क्षणमात्र कानों में चामरत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् चँवर बन जाते हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—

ग्राहाणां क्रीडा-वर्णनं करोति—

सहसा—हठात्, अकस्मात् इत्यर्थः । उत्पतद्भिः–समुत्पतद्भिः,मातृङ्गनक्रैः—नागकुम्भीरैः, द्विधा—द्वयोः भागयोः, भिन्नान्—विभक्तान्, समुद्रफेनान्—रत्नाकरफेनान्, पश्य—अवलोकय,ये–फेनाः इत्यर्थः । एषाम् –एतेषाम्, जल मातङ्गनक्राणाम् इत्यर्थः । कपोलेषु—गण्डस्थलेषु, संसर्पितया–संसर्पणेन हेतुना, कर्णक्षणचामरत्वम्—कर्णेषु क्षणं चामरत्वम्, व्रजन्ति–प्राप्नुवन्ति ।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो विद्यते ।

टिप्पणी—सहसा – एकाएक । यह अव्यय पद है ।

व्रजन्ति–व्रज् + लट् + अन्ति (प्रथमपुरुष-बहुवचन)

उत्पतद्भिः–उद् + पत् + लट् – शतृ = उत्पतन्तः, तैः ।

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ।
सूर्यांशुसम्पर्कसमुद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ॥१२॥

**अन्वय**—वेलानिलाय प्रसृताः महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः एते भुजङ्गाः सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः फणस्थैः मणिभिः व्यज्यन्ते ।

**शब्दार्थ** :—वेलानिलाय-तट-पवन का सेवन करने के लिए, प्रसृताः—बाहर निकले हुए, महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः—बड़ी-बड़ी लहरों के बढ़ने की तरह लगने वाले, एते भुजङ्गाः—ये (जल) सर्प, सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः—सूर्य-किरणों के सम्पर्क से बढ़ी हुई कान्ति वाली, फणस्थैः मणिभिः—फण-स्थित मणियों से, व्यज्यन्ते—मालूम पड़ते हैं ।

**भाषानुवाद**—तट-पवन का सेवन करने के लिए बाहर निकले हुए बड़ी-बड़ी लहरों के बढ़ने की तरह लगने वाले ये (जल) सर्प सूर्य-किरणों के सम्पर्क से बढ़ी हुई कान्ति वाली फणस्थित मणियों से मालूम पड़ते हैं यानी पहचाने जाते हैं ।

**संस्कृत व्याख्या**—

कविः समुद्रीसर्पान् वर्णयति । रामः सीतां प्रति कथयति—

वेलानिलाय—तटपवनाय,समुद्रतटस्थसमीरं पातुम् इत्यर्थः । प्रसृता—निर्गताः, महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः—महातरङ्गोद्रेकनिर्विशेषाः, एते—इमे,दृश्यमानाः वा,भुजङ्गाः—सर्पाः,सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः—सूर्य किरणसंसर्गप्रवृद्ध कान्तिभिः फणस्थैः—फणस्थितैः, मणिभिः—रत्नविशेषैः, व्यज्यन्ते—उन्नीयन्ते, व्यक्ताः भवन्ति इत्यर्थः ।

अत्रोन्मीलितालङ्कारः ।

**टिप्पणी**—वेलानिलाय—समुद्र-तट का पवन पान करने के लिए । वेलायाः अनिलः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मै ।

भुजङ्गाः—सर्प । भुजैः गच्छन्ति इति भुजङ्गा । भुज् + गम् + खच् ।

व्यज्यन्ते—मालूम पड़ते हैं । वि + अञ्ज् + लट्—अन्ते, यक् ।

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात् ।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथाञ्चित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम् ॥१३॥

**अन्वय**—तव अधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु सहसा ऊर्मिवेगात् पर्यस्तम् एतत् शङ्खयूथम् ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथञ्चित् क्लेशाद् अपक्रामति ।

**शब्दार्थ**—तव—तुम्हारे, अधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु—अधरों से स्पर्धा (बराबरी) करने वाले प्रवालों में, सहसा—एकाएक, ऊर्मिवेगात्—तरङ्गों के वेग से, पर्यस्तम्—ऊपर फेंककर फैलाया हुआ, एतत्—यह, शङ्खयूथम्—शङ्खसमूह, ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखम्—(प्रवालों के) ऊपर निकले अंकुरों में मुख के फंस जाने से, कथञ्चित्—किसी तरह, क्लेशात्—कठिनाई से, अपक्रामति—(इधर-उधर) चल पाता है।

**भाषानुवाद**—तुम्हारे अधरों से स्पर्धा करने वाले प्रवालों में सहसा तरङ्गों के वेग से ऊपर फेंक कर फैलाया हुआ यह शङ्खसमूह, प्रवालों के ऊपर निकले अंकुरों में मुख के फंस जाने से किसी तरह कठिनाई से इधर-उधर चल पाता है।

**संस्कृत व्याख्या**—

शङ्खान् एवं प्रवालान् वर्णयति—

तवाधरस्पर्धिषु—तवाधरोष्ठप्रतिस्पर्धिषु, विद्रुमेषु—प्रवालेषु, सहसा—अकस्मात्, ऊर्मिवेगात्—तरङ्गवेगात्, पर्यस्तम्—प्रोत्क्षिप्तम्, एतत्—इदम्, शङ्खयूथम्—शङ्खवृन्दम्, ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखम्—ऊर्ध्वाङ्कुरैः विद्रुमप्ररोहैः प्रोतमुखं स्यूतवदनम्, कथञ्चित्—केनापि प्रकारेण, क्लेशात्—कष्टात्, अपक्रामति—विलम्ब्य अपसरति इत्यर्थः।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो विद्यते।

**टिप्पणी**—ऊर्मिवेगात्—लहर के वेग से। ऊर्मीणां वेगः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मात्।

क्लेशात्—कष्ट से। क्लेशं प्राप्य, इस अर्थ में 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकारणे च' वार्तिक से पञ्चमी विभक्ति हुई है। उक्त वार्तिक का अर्थ है—जब ल्यप् या क्त्वा प्रत्यय का लोप होता है तब क्रिया के कर्म में पञ्चमी विभक्ति होती है। अतः 'क्लेशं प्राप्य' में 'प्राप्य' का लोप है।

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥१४॥

अन्वय—पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेण आवर्तवेगात् भ्रमता घनेन अयं समुद्रः भूयः गिरिणा प्रमथ्यमान इव भूयिष्ठम् आभाति।

शब्दार्थ—पयांसि पातुम्—जल पीने के लिए, प्रवृत्तमात्रेण—प्रवृत्त-मात्र, आवर्तवेगात्—भँवर के वेग से, भ्रमता घनेन—घूमते हुए बादल से, अयं समुद्रः—यह समुद्र, भूयः—फिर, गिरिणा—मन्दरांचल द्वारा, प्रमथ्य-मानः इव—मथे जाते हुए की तरह, भूयिष्ठम्—अत्यन्त, आभाति—सुशो-भित होता है।

भाषानुवाद—जल पीने के लिए प्रवृत्तमात्र भँवर के वेग से घूमते हुए बादल से यह समुद्र फिर मन्दराचल द्वारा मथे जाते हुए की तरह अत्यन्त सुशोभित होता है।

संस्कृत व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् समुद्रस्योपरि मेघानां शोभायाः वर्णनं करोति—पयांसि—जलानि, पातुम्—ग्रहीतुम्, प्रवृत्तमात्रेण—तत्परमात्रेण, न तु पीवता इतिभावः। आवर्तवेगात्—भ्रमरवेगात्, भ्रमता—परिभ्रमता, घनेन—मेघेन, अयम्—एषः, समुद्रः—रत्नाकरः, भूयः—पुनः, गिरिणा—मन्दरा-चलेन, प्रमथ्यमानः इव—मथ्यमानः इव, भूयिष्ठम्—अत्यन्तम्, आभाति—शोभते।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—पयांसि—जल। यहाँ पयस् शब्द द्वितीया विभक्ति, बहुवचन का रूप है।

गिरिणा - पर्वत द्वारा; मन्दरांचल के द्वारा। प्राचीन काल में देव और दानवों ने मिलकर समुद्र-मन्थन किया था, जिसमें मन्दराचल को मथानी और वासुकिनाग को रस्सी बनाया था। मथानी और रस्सी की सहायता से समुद्र-मन्थन कर अमृतादि चौदह रत्न प्राप्त किये।

आभाति—शोभित होता है। आ+भा+लट्+ति।

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा॥ १५॥

अन्वय—अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्वी तमालतालीवनराजिनीला वेला धारानिबद्धा कलङ्करेखा इव आभाति।

शब्दार्थ—अयश्चक्रनिभस्य—लोहचक्र की तरह, लवणाम्बुराशेः—क्षारसमुद्र की, वेला—तट-भूमि, दूरात्—दूर होने के कारण, तन्वी—पतली, तमालतालीवनराजिनीला—तमालों और तालों की वनपङ्क्ति से श्यामवर्णवाली (दिखाई पड़ती है),धारानिबद्धा—धार पर लगी हुई. कलङ्क रेखा इव—कलङ्क रेखा की तरह यानी मुर्चे की तरह, आभाति—शोभित हो रही है।

भाषानुवाद—लोहचक्र की तरह क्षारसमुद्र की तट-भूमि दूर होने के कारण पतली एवं तमालों और तालों की वनपङ्क्ति से श्यामवर्ण वाली दिखाई पड़ती है, (चक्र की) धार पर लगी हुई कलङ्करेखा की तरह यानी मुर्चे की तरह शोभित हो रही है।

संस्कृत-व्याख्या—

समुद्र-तटस्य तन्वीं रेखां वर्णयति—

अयश्चक्रनिभस्य—अश्मसाररथाङ्गसदृशस्य, लवणाम्बुराशेः—क्षारसमुद्रस्य, दूरात्—विप्रकृष्टात्, तन्वी—सूक्ष्मा, तमालतालीवनराजिनीला—कालस्कन्धतृणराजवनपङ्क्तिश्यावर्णा, वेला—तीरभूमिः, धारानिबद्धा—चक्राश्रिता, कलङ्करेखा इव—मालिन्यरेखा इव, आभाति—प्रतिभाति।

श्लोकेऽस्मिन् उत्प्रेक्षालङ्कारो वर्त्तते।

टिप्पणी—अयश्चक्रनिभस्य—लोहे के पहिये की तरह। वेला—तट वेल्यते अनया इति वेला। वेल्+अ (गुरोश्च हलः) = वेल। वेल शब्द से टाप् प्रत्यय करने पर 'वेला' यह रूप सिद्ध होता है।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते सम्भावयत्याननमायताक्षि!।
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव बिम्बाधरबद्धतृष्णम्॥ १६॥

अन्वय—आयताक्षि! वेलानिलः केतकरेणुभिः ते आननं सम्भावयति बिम्बाधरबद्धतृष्णं मां मण्डनकालहानेः अक्षमं वेत्ति इव।

शब्दार्थ—आयताक्षि—हे विशालनेत्रों वाली सीते ! वेलानिलः—समुद्र-तट की वायु, केतकरेणुभिः—केतकी पुष्प के पराग से, ते—तुम्हारे, आननं संभावयति—मुख को सुशोभित कर रही है, इव—मानो, बिम्बाधरबद्धतृष्णम् —बिम्बाफल रूप अधर के पान के लिए बँधी हुई तृष्णावाले अर्थात्—बिम्बाधर का पान करने के लिए व्याकुल, माम्—मुझे, मण्डनकालहानेः अक्षमम्—शृङ्गारजन्य विलम्ब को सहने में असमर्थ, वेत्ति—जानती है।

भाषानुवाद—हे विशाल नेत्रों वाली सीते ! समुद्र-तट की वायु केतकी पुष्प के पराग से तुम्हारे मुख को सुशोभित कर रही है, मानो वह (तुम्हारे) बिम्बाफल रूप अधर के पान के लिए बँधी हुई तृष्णा वाले अर्थात् बिम्बाधर का पान करने के लिए व्याकुल मुझे शृङ्गारजन्य विलम्ब को सहने में असमर्थ जान रही है।

संस्कृत-व्याख्या—

समुद्र-तटस्य वायोरुपकारस्य वर्णनं करोति—आयताक्षि—हे आयताक्षि। विशालनेत्रे वा, वेलानिलः—समुद्र-तटवायुः, केतकरेणुभिः—केतकीपुष्पपरागैः, ते—तव, आननम्—मुखम्, सम्भावयति—सम्मानयति, अलङ्कृत करोति इत्यर्थः। बिम्बाधरबद्धतृष्णम्—बिम्बाफलाधरोष्ठनिबद्धतृष्णम्, माम्—रामम्, मण्डनकालहानेः—शृङ्गारसमयक्षतेः, मण्डनसमयविलम्बस्य इति भावः। अक्षमम्—असहमानम्, वेत्ति इव—जानाति इव।

श्लोकेऽस्मिन् उत्प्रेक्षालङ्कारो वर्तते।

टिप्पणी—केतकरेणुभिः—केतकी पुष्प के पराग से। केतकानां रेणवः (षष्ठी तत्पुरुष समास), ताभिः।

आननम्—मुख को। 'आननं वदनं मुखम्' इत्यमरः। अक्षमम्—असमर्थ। क्षमते इति क्षमः। क्षम् + अच्, न क्षमः अक्षमः (नञ् समास), तम्।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः।
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥ १७ ॥

अन्वय—एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं फलावर्जितपूगमालं पयोधेः कूलम् विमान वेगात् मुहूर्तेन प्राप्ताः ।

शब्दार्थ—एते वयम्—ये हमलोग, सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्—बालुओं से फूटी हुई सीपियों के फैल जाने से मुक्ता समूह वाले, फलावर्जितपूगमालम्—फूलों के भार से झुके हुए सुपारीवृक्षसमूह वाले, पयोधेः कूलम्—समुद्र के तट पर, विमानवेगात्—विमान के वेग के कारण, मुहूर्तेन—क्षणभर में, प्राप्ताः—पहुँच गये ।

भाषानुवाद—ये हमलोग बालुओं से फूटी हुई सीपियों के फैल जाने से मुक्तासमूह वाले और फलों के भार से झुके हुए सुपारीवृक्ष समूह वाले समुद्र के तट पर विमान के वेग के कारण क्षणभर में पहुँच गये ।

संस्कृत-व्याख्या—

कविः समुद्रस्य तटभूमिं वर्णयति ।

रामः सीतां प्रति अकथयत्—एते—इमे, वयम्—रामादयः इत्यर्थः । सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्—सिकतामयस्फुटितशुक्तिविकीर्णमौक्तिकसमूहम् फलावर्जितपूगमालम्—फलानमितगुवाकसमूह, पयोधेः—रत्नाकरस्य, कूलम्—तटम्, विमानवेगात्—पुष्पकविमानजवात्, मुहूर्तेन—क्षणेन, प्राप्ताः—समागताः ।

अत्रोदात्तालङ्कारः ।

टिप्पणी—विमानम्—विमान । वि + मा + ल्युट् (अन) ।
मुहूर्तेन—क्षणभर में । 'मुहूर्तो घटिकाद्वयम्' इत्यमरः ।

कुरुष्व तावत्करभोरु ! पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि ! दृष्टिपातम् ।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥ १८ ॥

अन्वय—करभोरु । मृगप्रेक्षिण ! तावत् पश्चात् मार्गे दृष्टिपातं कुरुष्व । एषा सकानना भूमिः विदूरीभवतः समुद्रात् निष्पतति इव ।

शब्दार्थ—करभोरु—हे करभोरु ! मृगप्रेक्षिणि—हे मृगनयनी सीते ! तावत् पश्चात्—जरा पीछे, मार्गे दृष्टिपातं कुरुष्व—मार्ग पर दृष्टिपात करो,

एषा सकानना भूमिः—यह जंगलों से भरी हुई भूमि, विदूरीभवतः—दूर होते हुए, समुदात्—समुद्र से, निष्पतति इव—मानो निकल रही है।

भाषानुवाद—हे करभोरु !, हे मृगनयनी सीते ! जरा पीछे मार्ग पर दृष्टिपात करो। यह जगलों से भरी हुई भूमि दूर होते हुए समुद्र से मानो निकल रही है।

संस्कृत-व्याख्या—

वनसहितभूमेः दृश्यस्य वर्णनं करोति—

करभोरु—हे करभोरु !, मृगप्रेक्षिणि—हे मृगलोचने सीते !, तावत्, पश्चात्—अतीते, मार्गे—पथि, दृष्टिपातं कुरुष्व—दृष्टिं प्रक्षिप, विलोकय इति भावः। एषा—इयम्, सकानना—वनसहिता, भूमिः—वसुधा, विदूरीभवतः—विशेषेण दूरं व्रजतः, समुद्रात्—रत्नाकरात्, निष्पतति इव—निष्क्रामति इव।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारः उत्प्रेक्षालङ्कारश्च स्तः।

टिप्पणी—करभोरु—करभ के समान जाँघों वाली। करभ इव ऊरू यस्याः सा करभोरु (बहुव्रीहि समास), करभोरु + ऊङ् (ऊरूत्तरपदादौपम्ये) इस सूत्र से ऊङ् प्रत्यय हुआ। सम्वोधन में 'करभोरु' होता है।

निष्पतति—निकल रही है। निस्—पत् + लट् + ति।

क्वचित्पथा सञ्चरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्त्तते पश्य तथा विमानम् ॥ १९ ॥

अन्वय—पश्य, विमानं मे मनसः अभिलाषः यथाविधः तथा प्रवर्तते। क्वचित् सुराणां क्वचित् घनानां क्वचित् पततां च पथा सञ्चरते।

शब्दार्थ : पश्य—देखो, विमानम्—विमान, मे—मेरे, मनसः—मन की, अभिलाषः यथाविधः—अभिलाषा जिस प्रकार की होती है, तथा प्रवर्तते—वैसे ही चलता है, क्वचित्—कहीं, सुराणाम्—देवताओं के, क्वचित्—कहीं, घनानाम्—बादलों के, क्वचित् पततां च—और कहीं पक्षियों के, पथा—मार्ग से, सञ्चरते—चलता है।

भाषानुवाद—देखो, (यह) पुष्पक विमान मेरे मन की अभिलाषा जिस प्रकार की होती है, वैसे ही चलता है। कहीं देवताओं के, कहीं बादलों के और कहीं पक्षियों के मार्ग से चलता है यानी उड़ता चलता है।

संस्कृत-व्याख्या—

मनसः अनुसारेण पुष्पकविमानस्य गतेः वर्णनं करोति—

पश्य—अवलोकय, विमानम्—पुष्पकविमानम्, मे—मम, मनसः—चेतसः, अभिलाषः—इच्छा, यथाविधः—यादृशः, तथा—तेन प्रकारेण, प्रवर्तते—प्रयाति, क्वचित्—कुत्रचित्, सूराणाम्—देवानाम्, क्वचित्—कुत्रचित्, घनानाम्—मेघानाम्, क्वचित्—कुत्रचित्, पतताम् च—पक्षिणां च, सञ्चरते—चलति, उत्पपति इत्यर्थः।

अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः।

टिप्पणी—यथाविधः—जिस प्रकार की जैसी (इच्छा)। 'अभिलाषः' का विशेषण 'यथाविध' है।

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥२०॥

अन्वय—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाशवायुः दिनयौवनोत्थान् ते मुखे स्वेदलवान् आचामति।

शब्दार्थ—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः—इन्द्र के ऐरावत (हाथी) के मद की सुगन्धि से युक्त, त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः—आकाशगङ्गा की तरङ्गों से विमर्दित होने के कारण शीतल, असौ—यह, आकाशवायुः—आकाश,पवन-दिनयौवनोत्थान्—दोपहर की गर्मी से उत्पन्न हुए, ते—तुम्हरे, मुखे—मुख पर के, स्वेदलवान्—पसीने की बून्दों को, आचामति—सुखा रहा है।

भाषानुवाद—इन्द्र के ऐरावत (हाथी) के मद की सुगन्धि से युक्त आकाशगङ्गा की तरङ्गों से विमर्दित होने के कारण शीतल यह आकाश-पवन दोपहर की गर्मी से उत्पन्न हुए तुम्हारे मुख पर के पसीने की बून्दों को सुखा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—

आकाश-वायोः वर्णनं करोति—

महेन्द्रद्विपदानगन्धिः—ऐरावतमदजलगन्धिः, त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः—आकाशगङ्गातरङ्गसम्पर्कशीतलः, असौ,—सः,आकाशवायुः—अन्तरिक्षपवनः, दिनयौवनोत्थान—मध्याह्नसंभवान्, ते—तव, मुखे—आनने, स्वेदलवान्—स्वेदकणान्, आचामति—हरति ।

श्लोकस्यास्यवर्णनेन सुरपथे विमानस्य यात्रा सूचिता भवति ।

टिप्पणी—आकाशवायु—आकाश में बहने वाला पवन। आकाशस्य-वायुः (षष्ठी तत्पुरुष समास) ।

स्वेदलवान्—पसीने की बून्दों को । स्वेदस्यलवाः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तान् ।

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि ! कुतूहलिन्या ।
आमुञ्चतीवाभरणं—द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो—घनस्ते ॥२१॥

अन्वय—चण्डि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलम्बितेन करेण स्पृष्ट उद्भिन्नविद्युद्वलयः घनः ते द्वितीयम् आभरणम् आमुञ्चति इव ।

शब्दार्थ—चण्डि—हे कोपशीले ! कुतूहलिन्या—कुतूहल वाली त्वया—तुम्हारे द्वारा, वातायनलम्बितेन करेण—(विमान की) खिड़की से बाहर लटकाये हुए हाथ से,स्पृष्टः—स्पर्श किया गया, उद्भिन्नविद्युद्वलयः—चमकती हुई चपला रूप कंगन वाला, घनः—मेघ, ते—तुम्हें, द्वितीयम् आभरणम् आमुञ्चति इव—मानों दूसरा भूषण दे रहा हो ।

भावानुवाद—हे कोपशीले ! कुतूहल वाली तुम्हारे द्वारा (विमान की) खिड़की से बाहर लटकाये हुए हाथ से स्प किया गया, चमकती हुई चपला रूप कंगन वाला (वह) मेघ तुम्हें मानों दूसरा भूषण दे रहा है ।

संस्कृत व्याख्या—

सीतायाः करेण स्पृष्टस्यमेघस्य शोभां वर्णयति—

चण्डि—हे चण्डि !,हे कोपनशीले ! इत्यर्थः । कुतूहलिन्या—कौतुकवत्या विनोदार्थिन्या वा, त्वया—भवत्या, वातायनलम्बितेन—गवाक्षावस्र-

सितेन, करेण—हस्तेन, स्पृष्टः—आमृष्टः, अद्भिन्नविद्युद्वलयः—उद्दीप्त-तडिद्वलयः, घनः—मेघः, ते—तुभ्यम्, द्वितीयम्—अपरम्, आभरणम्—आभूषणम्, आमुञ्चति इव—अर्पयतीव।

श्लोकेऽस्मिन् रूपकालङ्कारः उत्प्रेक्षालङ्कारश्च स्तः।

टिप्पणी—कुतूहलिन्या—कुतूहल वाली। कौतूहलं कौतूकं च कुतूकं च कुतूहलम्' इत्यमरः।

करेण—हाथ से। क्रियते अनेन इति करः। कृ+घञ्, तेन।

आमुञ्चति—आ+मुञ्च्+लट्+ति।

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ॥२२॥

अन्वय—अमी चीरभृतः जनस्थानम् अपोढविघ्नं मत्वा समारब्ध-नवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यासते।

शब्दार्थ—अमी—ये, चीरभृतः—चीरधारी तपस्वी अर्थात् वल्कल-धारी तपस्वी, जनस्थानम्—जन्मस्थान को, अपोढविघ्नं मत्वा—निर्विघ्न मानकर, समारब्धनवोटजानि—बनने वाली नव पर्णशालाओं से युक्त, चिरो-ज्झितानि—(राक्षसों के भय से) चिरकाल तक छोड़े हुए, आश्रममण्डलानि-आश्रमपदों में, यथास्वम्—(पहले के) अपने-अपने क्रम से यानी अपने-अपने स्थान में, अध्यासते—निवास करने लगे।

भाषानुवाद—ये चीरधारी अर्थात् वल्कलधारी तपस्वी जन्म स्थान को निर्विघ्न मानकर बनने वाली नवपर्णशालाओं से युक्त (राक्षसों के भय से) चिरकाल तक छोड़े हुए आश्रमपदों में (पहले के) अपने-अपने क्रम से यानी अपने-अपने स्थान में निवास करने लगे।

संस्कृत व्याख्या—

निर्विघ्ने जनस्थाने मुनिजनाः पुनर्वासं प्रारब्धवन्तः इत्यस्य वर्णनं कपिना कृतं श्लोकेऽस्मिन्—

अमी—इमे, चीरभृतः—चीरधारिणः तपस्विनः, जनस्थानम्—जन्म-स्थानम्, दण्डकारण्यभागविशेषम् इत्यर्थः। अपोढविघ्नम्—विघ्नरहितम्

अपास्तविघ्नं वा, मत्वा—ज्ञात्वा, समारब्धनवोटजानि—आरब्धनूतनोटजानि, चिरोज्झितानि—चिरकालपरित्यक्तानि, आश्रममण्डलानि—आश्रमविभागान्, यथास्वम्—साधिकारम्, अध्यास्ते—अधितिष्ठान्ति।

टिप्पणी—जनस्थानम्—जन्मस्थान को। दण्डकारण्य का एक भाग, जहाँ खर-दूषण निवास करते थे। यहीं सीता का हरण हुआ था। अध्यासते—निवास करते हैं। अधि+आस्+लट्—अते। यहाँ 'आश्रममण्डलानि' में 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र से कर्म संज्ञा हुई यानी द्वितीया विभक्ति हुई।

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मयानूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्॥ २३॥

अन्वय—एषा सा स्थली यत्र त्वां विचिन्वता मया एकं नूपुरम् अदृश्यत (यत्) त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात् इव बद्धमौनम्।

शब्दार्थ: एषा सा स्थली - यह वही वन भूमि है, यत्र—जहाँ, त्वाम्—तुम्हें, विचिन्वता—ढूँढ़ते हुए, मया—मैंने, उर्व्याम्—पृथिवी पर, एकं नूपुरम्—एक पायल को, अदृश्यत—देखा, (यत्—जो), त्वच्चरणारविन्द-विश्लेषदुःखात् इव—मानों तुम्हारे चरण-कमल के वियोग से उत्पन्न दुःख से, बद्धमौनम्—चुपचाप पड़ा हुआ था।

भाषानुवाद—यह वही वनभूमि है, जहाँ तुम्हें ढूँढ़ते हुए मैंने पृथिवी पर एक पायल को देखा (जो) मानों तुम्हारे चरणकमल के वियोगजन्यदुःख से चुपचाप पड़ा हुआ था।

संस्कृत-व्याख्या—

यत्र सीतायाः एकं नूपुरं मिलितवदासीत्, तस्य स्थानस्य वर्णनं करोति—

एषा—इयम्, सा-प्रसिद्धा, स्थली-वन प्रदेशः, यत्र-यस्याम् इत्यर्थः। त्वाम्—भवतीम्, विचिन्वता—अन्विष्यता, मया—रामेण, एकं नूपुरम्—एकं मञ्जीरम्। अदृश्यत—दृष्टम्, (यत् मञ्जीरम्), त्वच्चरणारविन्द-विश्लेषदुःखात् इव—त्वच्चरणोत्पलवियोगकष्टादिव, बद्धमौनम्—निःशब्दम्।

श्लोकेऽस्मिन् रूपकालङ्कारः उत्प्रेक्षालङ्कारश्च स्तः।

टिप्पणी—विचिन्वता—ढूँढ़ते हुए। वि + चि + लट् — शतृ। विचिन्वन्, तेन। बद्धमौनम्—चुपचाप, शान्त। मुनेः भावः मौनम्। मुनि + अण्। बद्धं मौनं येन तत् बद्धमौनम् (बहुव्रीहि समास)। कहने का तात्पर्य यह है कि मौन रहना मुनिव्रत है। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो तुम्हारे नूपुर ने मुनि-व्रत धारण किया हो। नूपुरम्—पायल। 'मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः।

त्वं रक्षसा भीरु ! यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ २४ ॥

अन्वय—भीरु त्वं रक्षसा यतः अपनीता तं मार्गं वक्तुम् अशक्नुवत्यः एताः लताः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मे अदर्शयन्।

शब्दार्थ : भीरु—हे भयशीले ! त्वम्—तुम, रक्षसा—राक्षस रावण के द्वारा, यतः—जिससे अर्थात् जिस मार्ग से, अपनीता—हर कर ले जायी गयी, तं मार्गम्—उस मार्ग को, वक्तुम् अशक्नुवत्यः—बोलने में असमर्थ, एताः लताः—इन लताओं ने, आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः—नत पल्लवों वाली शाखाओं से, कृपया—कृपाकर, मे—मुझे, अदर्शयन्—दिखलाया।

भाषानुवाद—हे भयशीले ! तुम राक्षस रावण के द्वारा जिस मार्ग से हर कर ले जायी गयी, उस मार्ग को बोलने में असमर्थ इन लताओं ने नत-पल्लवों वाली शाखाओं से कृपाकर मुझे दिखलाया।

संस्कृत-व्याख्या—

'वक्तुम् अशक्नुवत्यः लताः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः सीतायाः गमन—मार्गं रामं समबोधयन्, इत्यस्य वर्णनं कविना कृतम् अस्मिन् श्लोके—

भीरु—भयशीले !, त्वम्—भवती, रक्षसा—रावणेन, यतः—येन पथा, अपनीता—अपहृता, तम्—अमुम्, मार्गम्—पन्थानम्, वक्तुम्—कथयितुम्, अशक्नुवत्यः—असमर्थाः, एताः—इमाः, लताः—वल्लयः, आवर्जितपल्लवाभिः—नमितकिसलयाभिः, शाखाभि—विटपैः, कृपया—दयया, मे—मह्यम्, अदर्शयन्—असूचयन् इत्यर्थः।

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

टिप्पणी—रक्षसा—राक्षस (रावण) के द्वारा। 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः। मार्गम्—मार्ग को। मार्ग्यते संस्क्रियते पादेन इति मार्गः। मार्ग + घञ्। अदर्शयन्—दिखाया, सूचित किया। भाव यह है कि लताओं ने अपनी शाखा-रूपी हाथों से तुम्हारे अपहरण का मार्ग सूचित किया।

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि ॥ २५ ॥

अन्वय—दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः मृग्यः उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः तव अगतिज्ञं मां समबोधयन्।

शब्दार्थ—दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः—कुश के अङ्कुरों को खाने में निस्पृह, मृग्यः—हरिणियों ने, उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि—उठी हुई पालकों वाली आँखों को, दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः—दक्षिण दिशा की ओर करके, तव—तुम्हारी, अगतिज्ञम्—गति को न जानने वाले अर्थात् मार्ग को न जानने वाले, माम्—मुझे (मार्ग), समबोधयन्—बता दिया।

भाषानुवाद—कुश के अङ्कुरों को खाने में निस्पृह हरिणियों ने उठी हुई पलकों वाली आँखों को दक्षिण दिशा की ओर करके तुम्हारी गति को न जानने वाले अर्थात् मार्ग न जानने वाले मुझे (मार्ग) बता दिया।

संस्कृत-व्याख्या—

मृग्योऽपि सीतायाः गमनमार्गं रामं निरदेशयन्' इत्यस्य वर्णनं कविना कृतं श्लोकेऽस्मिन्—

दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः—कुशाङ्कुरनिस्पृहाः, मृग्यः—हरिण्यः, उत्पक्ष्मराजीनि—उद्गतनेत्रलोमराजीनि, विलोचनानि—नेत्राणि, दक्षिणस्यां दिशि—दक्षिणदिग्विभागे, व्यापारयन्त्यः—प्रवर्तयन्त्यः, तव—ते, अगतिज्ञम्—न गतिज्ञम्, गत्यनभिज्ञम् इत्यर्थः। माम्—रामम्, समबोधयन्—सम्यक् अबोधयन्

टिप्पणी—मृग्यः—हरिणियां। मृग + ङीष् = मृगी। प्रथमा विभक्ति,

बहुवचन—मृग्यः। महाकवि कालिदास ने मृग का प्रयोग न कर मृगी का प्रयोग किया है। भाव यह है कि मृगियाँ स्त्री जाति के होने के कारण सीता के प्रति विशेष सहानुभूति रखती थीं। इसलिए खाना-पीना छोड़कर राम को इशारे से मार्ग बताने लगीं।

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम्।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

अन्वय—अम्बरलेखि माल्यवतः गिरेः शृङ्गम् एतत् पुरस्तात् आविर्भवति। यत्र घनैः नवं पयः मया त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम्।

शब्दार्थ—अम्बरलेखि—आकाश को स्पर्श करनेवाला, माल्यवतः गिरेः—माल्यवान् पर्वत का, शृङ्गम्—शिखर, एतत्—यह, पुरस्तात्—आगे, आविर्भवति—प्रकट हो रहा है अर्थात् क्रमशः दीख रहा है। यत्र—जहाँ, (शिखर पर) घनैः—बादलों ने, नवं पयः—नया जल, (और) मया—मैंने, त्वद्विप्रयोगाश्रु—तुम्हारे विरह में आँसू को, समम्—साथ, विसृष्टम्—बरसाये थे।

भाषानुवाद—आकाश को स्पर्श करने वाला माल्यवान् पर्वत का शिखर यह सामने प्रकट हो रहा है अर्थात् क्रमशः दीख रहा है। इस शिखर पर बादलों ने नवजल और मैंने तुम्हारे विरह में आँसू एक साथ ही बरसाये थे।

संस्कृत व्याख्या—

माल्यवतः पर्वतस्य वर्णनं करोति—

अम्बरलेखि—अभ्रङ्कषम्, माल्यवतः—एतन्नामकस्य, गिरेः—पर्वतस्य, शृङ्गम्—शिखरम्, एतत्—इदम्, पुरस्तात्—अग्रे, आविर्भवति—दृष्टिगोचरं भवति, यत्र—शिखरे, घनैः—मेघैः, नवम्—नूतनम्, पयः—जलम्, मया—रामेण, त्वद्विप्रयोगाश्रु—त्वद्वियोगाश्रु, समम्—युगपत्, विसृष्टम्—परित्यक्तम्।

श्लोकेऽस्मिन् सहोक्तिरलङ्कारो विद्यते।

टिप्पणी—माल्यवतः गिरेः—माल्यवान् नामक पर्वत का। आदिकवि

वाल्मीकि ने भी माल्यवान् पर्वत पर राम के निवास करने का संकेत किया है। समम्—साथ छोड़ा। यह अव्यय है। 'साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः। विसृष्टम्—वि + सृज् + क्त।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेसरं च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥ २७ ॥

**अन्वय**—यस्मिन् धाराहतपल्वलानां गन्धश्च, अर्धोद्गतकेसरं कादम्बं च शिखिनां स्निग्धाः केकाः च, त्वया बिना में असह्यानि बभूवुः।

**शब्दार्थ**—यस्मिन्—जिस शिखर पर, धाराहतपल्वलानाम्—वर्षा की धाराओं से ताड़ित पोखरों की, गन्धः—सोंधी गन्ध, अर्धोद्गतकेसरम्—अर्धविकसित केसर वाले, कादम्बम्—कदम्बपुष्प, च—और, शिखिनां स्निग्धाः केकाः—मयूरों के मधुर टें-टें शब्द, त्वया विना—तुम्हारे बिना, मे—मुझे, असह्यानि बभूवुः—असह्य हो गये।

**भाषानुवाद**—जिस (माल्यवान् पर्वत) के शिखर पर वर्षा की धाराओं से ताड़ित पोखरों की सोंधी गन्ध, अर्धविकसित केसरवाले कदम्बपुष्प और मयूरों के मधुर टें-टें शब्द तुम्हारे बिना मुझे असह्य हो गये।

**संस्कृत-व्याख्या**—

रामः सीताम्प्रति अभणत् यत् तव वियोगकाले धाराहतपल्वलानां गन्धः, अर्धविकसित कदम्बपुष्पं तथा शिखिनां मधुराः केकाः असह्याः बभूवुः इति वर्णनमस्ति श्लोकेऽस्मिन्—

यस्मिन्—माल्यवतः शिखरे, धाराहतपल्वलानाम्—जलवर्षण, ताडितालपसरसाम्, गन्धश्च—आमोदश्च, अर्धोद्गतकेसरम्—अर्धविकसितकिञ्जल्कम्, कादम्बं च—कदम्बपुष्पं च, शिखिनाम्—मयूराणाम्, स्निग्धाः मधुराः, केकाः च—ध्वनयः च, त्वया—भवत्या, विना—कृते, मे—मम, असह्यानि—न सह्यानि, बभूवुः—अभवन्।

अत्र विनोक्तिरलङ्कारः।

**टिप्पणी**—धाराहतपल्वलानाम्—वर्षा से ताडित (सिक्त) हुए छोटे

तालाबों (जो ग्रीष्मकाल में सूख जाते हैं) को। 'वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः। त्वया विना—तुम्हारे बिना। यहाँ 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्' इस सूत्र से 'विना' के योग में तृतीया विभक्ति हुई। केकाः—मयूरों की बोलियां। 'केका मयूरवाणी स्यात्' इत्यमरः।

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु! तवोपगूढम्।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथञ्चिद्घनगर्जितानि ॥ २८ ॥

अन्वय—भीरु! यत्र च पूर्वानुभूतं तव कम्पोत्तरम् उपगूढं स्मरता मया गुहाविसारीणि घनगर्जितानि कथञ्चिद् अतिवाहितानि।

शब्दार्थ—च—और, भीरु—हे भयशीले! यत्र—जहाँ (माल्यवान् पर्वत के शिखर पर), पूर्वानुभूतम्—पूर्व अनुभूत, तव—तुम्हारे, कम्पोत्तरम् उपगूढम्—अतिकम्पनयुक्त आलिङ्गन को, स्मरता—स्मरण करते हुए, मया—मैंने, गुहाविसारीणि—गुफाओं मे (प्रतिध्वनित होने से) बढ़े हुए, घनगर्जितानि—मेघ-गर्जनों को, कथञ्चित्—किसी तरह यानी बड़े कष्ट से, अतिवाहितानि—बिताया अर्थात् सहन किया।

भाषानुवाद—और भी, हे भयशीले! जहाँ पूर्व अनुभूत तुम्हारे अतिकम्पनयुक्त आलिङ्गन को स्मरण करते हुए मैंने गुफाओं में (प्रतिध्वनित होने से) बढ़े हुए मेघ-गर्जनों को किसी तरह यानी बड़े कष्ट से बिताया अर्थात् सहन किया।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामः सीतामकथयत् यत् तव विरहकाले मेघध्वनयोऽपि असह्याः जाताः, इति वर्णनं दृश्यतामत्र—

भीरु—हे भयशीले! यत्र—माल्यवतः शिखरे, पूर्वानुभूतम्—पूर्वं सीताहरणात् प्राक् अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतम्, तव—ते, कम्पोत्तरम्—कम्पप्रधानम्, उपगूढम्—उपगूहनम्, आलिङ्गनम् इत्यर्थः। स्मरता—ध्यायता, मया—रामेण, गुहाविसारीणि—गुहासु कन्दरासु विसारीणि प्रसरणशीलानि, घनगर्जितानि—मेघगर्जनानि, कथञ्चित्—केनापि प्रकारेण, अतिवाहितानि—यापितानि, क्लेशेन गमितानि इति भावः।

टिप्पणी—घनगर्जितानि— मेघ-गर्जनों को। गर्ज् + क्त—गर्जितानि। घनानां गर्जितानि (षष्ठी तत्पुरुष समास)। अतिवाहितानि—विताये। अति + वह + णिच् + क्त।

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः॥ २६॥

अन्वय—यत्र आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात् विभिन्नकोशैः नवकन्दलैः विडम्ब्यमाना ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः माम् अक्षिणोत्।

शब्दार्थ—यत्र - जहाँ (माल्यवान् पर्वत के शिखर पर), आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात्—वर्षा की जलधाराओं से सिञ्चित पृथिवी से निकलती हुई भाप के सम्पर्क से, विभिन्नकोशैः नवकन्दलैः—विकसित कलियों वाले कन्दली के नवपुष्पों का, विडम्ब्यमाना—अनुकरण की जाने वाली, ते—तुम्हारी, विवाहधूमारुणलोचनश्रीः—विवाह कालिक (हवन) के धुओं से लाल नेत्रों की शोभा ने, माम्—मुझे, अक्षिणोत्—पीड़ित किया।

भावानुवाद—जहाँ वर्षा की जलधाराओं से सिञ्चित पृथिवी से निकलती हुई भाप के सम्पर्क से विकसित कलियों वाले कन्दली के नवपुष्पों द्वारा अनुकरण की जाने वाली, विवाहकालिक (हवन) के धूम से तुम्हारे लाल नेत्रों की शोभा ने मुझे पीड़ित किया।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामः विरहे सीतायाः नवकन्दलीपुष्परूपनेत्रयोः स्मरणेन कष्टमनुभवत्' इत्यस्य वर्णनं कविना कृतं श्लोकेऽस्मिन्—

यत्र—माल्यवतः शृङ्गे, आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात्—धारासम्पातसिञ्चितधराबाष्पसम्पर्कात्, विभिन्नकोशैः—विशेषेण प्रस्फुटितकुड्मलैः, नवकन्दलैः—नूतन कन्दली पुष्पैः, विडम्ब्यमाना—अनुक्रियमाणा, ते—तव, विवाहधूमारुणलोचनश्रीः—विवाहस्य पाणिग्रहकालस्य यः धूमः तेन अरुणा ईषत् रक्ता लोचनयोः नेत्रयोः श्रीःशोभा, माम्—रामम्, अक्षिणोत्—अपीडयत्।

अत्र स्मरणालङ्कारः।

**टिप्पणी**—आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात्—वर्षा की धारा के गिरने से सिक्त पृथिवी के बाष्प के संसर्ग से। 'धारासम्पात आसारः' इत्यमरः। सिच्+क्त=सिक्त। आसारेण सिक्ता (तृतीया तत्पुरुष समास), तादृशी क्षितिः, तस्याः बाष्पः तस्य योगः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मात्। यहाँ 'हेतौ पञ्चमी' से पञ्चमी विभक्ति हुई। विभिन्नकोशैः—विकसित कलियों वाले। वि+भिद्+क्त=विभिन्न। विभिन्नाः कोशाः येषां तानि (बहुव्रीहि समास), तैः।

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः॥ ३०॥

**अन्वय**—उपान्तवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पम्पासलिलानि दूरावतीर्णा (मे) दृष्टिः खेदात् पिबति इव।

**शब्दार्थ**—उपान्तवानीरवनोपगूढानि—तट-प्रान्त में बेंत के वन से आच्छादित, आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि—कुछ-कुछ दीख पड़ने वाले चंचल सारस पक्षियों से युक्त, अमूनि पम्पासलिलानि—इस पम्पा-सर के जल को दूरावतीर्णा—दूर से पड़ने वाली, (मे—मेरी), दृष्टिः—दृष्टि, खेदात् पिबति इव—मानों खेद से पी रही है।

**भाषानुवाद**—तट-प्रान्त में बेंत के वन से आच्छादित, कुछ-कुछ दीख पड़ने वाले चंचल सारस पक्षियों से युक्त इस पम्पासर के जल को दूर से पड़ने वाली (मेरी), दृष्टि मानों खेद से पी रही है।

**संस्कृत व्याख्या**—

पम्पासरसः जलस्य वर्णनं करोति—

उपान्तवानीरवनोपगूढानि—तटप्रान्तवञ्जुलकाननच्छन्नानि, आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि—ईषद् दृश्याः पारिप्लवाः चञ्चलाः सारसाः येषु तानि, अमूनि—एतानि, पम्पासलिलानि—पम्पासरो जलानि, दूरात्—सुदूरात्, अवतीर्णा—प्रतिता, (मे—मम) दृष्टिः, खेदात्—कष्टात्, पिबति इव—पानं करोति इव, कुतूहलेन पश्यतीव इति भावः।

टिप्पणी---खेदात् पिबतीव---मानों खेद से पी रही है। पुष्पक विमान पर स्थित राम की दृष्टि दूर तक जाकर पम्पा-सरोवर के जल तक पहुँचती है। अतः थक जाती है। श्रान्त व्यक्ति का जल पीना स्वाभाविक ही है। इसलिए दृष्टि मानों श्रमाधिकजन्य तृष्णा से जल पी रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि राम की दृष्टि बड़ी अभिलाषा के साथ एकटक से देख रही है। पा+लट्+ति।

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये! सस्पृहमीक्षितानि ॥३१॥

अन्वय--प्रिये! अत्र अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि अवियुक्तानि रथाङ्गनाम्नां द्वन्द्वानि ते दूरान्तरवर्तिना मया सस्पृहम् ईक्षितानि।

शब्दार्थ---प्रिये---हे प्रिये! अत्र---यहाँ (पम्पासरोवर पर), अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि---एक दूसरे को कमल-केसर देने वाले, अवियुक्तानि---वियोग रहित, रथाङ्गनाम्नां द्वन्द्वानि---चकवा-चकवी के जोड़ों को, ते---तुम्हारा, तुमसे; दूरान्तरवर्तिना---बहुत दूर में रहने वाले, मया---मैंने, सस्पृहम्---बड़ी अभिलाषा के साथ, ईक्षितानि---देखा था।

भाषानुवाद---हे प्रिये! यहाँ एक दूसरे को कमल-केसर देने वाले तथा वियोग रहित चकवा-चकवी के जोड़ों को तुम से बहुत दूर में रहने वाले मैंने बड़ी अभिलाषा के साथ देखा था।

संस्कृत-व्याख्या---

अवियुक्तानि चक्रवाकमिथुनानि वर्णयति---

प्रिये---हे प्रिये!, अत्र---पम्पासरोवरे, अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि---परस्परसमर्पित कमलकिञ्जल्कानि, अवियुक्तानि---न वियुक्तानि, रथाङ्गनाम्नां द्वन्द्वानि---चक्रवाकमिथुनानि, ते---तव, दूरान्तरवर्तिना सुदूरस्थितेन, मया---रामेण, सस्पृहम्---साभिलाषम्, ईक्षितानि---दृष्टानि।

टिप्पणी---दूरान्तरवर्तिना---बहुत दूर में स्थित। सस्नेहम्---स्नेहपूर्वक। स्पृहया सह वर्तमानम्। (बहुव्रीहि समास)।

ईक्षितानि—देखे गये। ईक्ष् + क्त्। कवि का यह कथन प्रसिद्ध है कि रात्रि में चकवा-चकवी एक दूसरे से विलग होकर क्रन्दन करते हैं। सूर्योदय होने पर आपस में मिल जाते हैं। सूर्यास्त से फिर यह क्रम चलता रहता है। उक्त श्लोक में राम चकवा-चकवी की संयोगावस्था का अवलोकन करते हैं। उन्हें देखकर उनके अन्तःकरण में अभिलाषा होती है कि इनके दुःखों की रात तो समाप्त हो गयी। पर, मेरे दुःख कब समाप्त होंगे? आज मेरी प्रिया होती तो मैं भी इसी तरह केलि-क्रीड़ा करता।

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ॥३२॥

अन्वय—(किं) च स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्रां इमां तन्वीं तटाशोकलतां त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः साश्रुः अहं सौमित्रिणा निषिद्धः।

शब्दार्थ—किञ्च—और भी, स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम्—स्तन के समान सुन्दर फूलों के गुच्छों से झुकी हुई, इमां तन्वीं तटाशोकलताम्—इस पतली तटस्थित अशोकलता को, त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या—'तुम्हें पा गया हूँ' यह समझकर, परिरब्धुकामः—आलिंगन करने की इच्छा वाला, साश्रुः—अश्रुयुक्त, अहम्—मैं, सौमित्रिणा—लक्ष्मण द्वारा, निषिद्धः—रोका गया।

भाषानुवाद—और भी, स्तन के समान सुन्दर फूलों के गुच्छों से झुकी हुई इस पतली तटस्थित अशोकलता को, 'तुम्हें पा गया हूँ' यह समझकर आलिङ्गन करने की इच्छा वाला, अश्रुयुक्त मैं लक्ष्मण के द्वारा रोका गया।

संस्कृत-व्याख्या—

'विरहे अशोकलतां विलोक्य रामस्य सीतायाः भ्रमः जातः' इत्यस्य वर्णनम् अस्मिन् श्लोके वर्तते—

किञ्च, स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम्—कुचकान्तगुच्छावनताम्, इमाम्—एताम्, तन्वीम्—सूक्ष्माम्, तटाशोकलताम्—(पम्पासरसः) कूले स्थितां वञ्जुललताम्, त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या—तव प्राप्तिः मिलनं जाता इति बुद्ध्या

विचारेण, परिरब्धुकामः—समालिङ्गितुमिच्छुः, साश्रुः—अश्रुसहितम्, अहम्—रामः, सौमित्रिणा—लक्ष्मणेन, निषिद्धः—निवारितः।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारः भ्रान्तिमान् अलङ्कारश्च स्तः।

टिप्पणी—तन्वी—पतली। राम को भ्रम होने का यह कारण था कि अशोकलता सीता की तरह पतली थी। तनु + ङीष् = तन्वी, ताम्।

परिरब्धुकामः—आलिङ्गन करने की इच्छा वाला। परि + रभ् + तुमुन् = परिरब्धुम्। परिरब्धुं कामः यस्य सः परिरब्धुकामः (बहुव्रीहि समास)

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम् ॥३३॥

अन्वय—विमानान्तरलम्बिनीनांकाञ्चनकिङ्किणीनां स्वनंश्रुत्वा खमुत्पतन्त्यः अमूः गोदावरीसारसपङ्क्तयः त्वां प्रत्युद्व्रजन्ति इव।

शब्दार्थ—विमानान्तरलम्बिनीनाम्—विमान के स्थान-स्थान पर लटकती हुई, काञ्चकिङ्किणीनाम्—सुवर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियों की, स्वनं श्रुत्वा—ध्वनि सुनकर, खम् उत्पतन्त्यः—आकाश में उडती हुई, अमूः—ये, गोदावरीसारसपङ्क्तयः—गोदावरी नदी के सारसों की पंक्तियाँ, त्वां प्रत्युद्व्रजन्ति इव—मानों तुम्हारी अगवानी करने के लिए आ रही है।

भावानुवाद—विमान के स्थान-स्थान पर लटकती हुई सुवर्णनिर्मित छोटी-छोटी घंटियों की ध्वनि सुनकर आकाश में उड़ती हुई ये गोदावरी नदी के सारसों की पक्तियाँ मानों तुम्हारी अगवानी करने के लिए आ रही हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

सारसानां वर्णनं कविना कृतं श्लोकेऽस्मिन्।

रामः सीतां कथयति—

विमानान्तरलम्बिनीनाम्—विमानस्य वायुयानस्य अन्तरेषु अवकाशेषु लम्बन्ते आश्रयन्ते याः तासाम्, काञ्चनकिङ्किणीनाम्—सुवर्णनिर्मितक्षुद्रघण्टिकानाम्, स्वनम्—ध्वनिम्, श्रुत्वा—आकर्ण्य, खम्—गगनम्, उत्पतन्त्यः उड्डीयमानाः, अमूः—इमाः, गोदावरीसारसपङ्क्तयः—गोदावरीनदीपुष्करा-

ह्वालयः, त्वाम्——सीताम्, प्रत्युद्व्रजन्ति इव——स्वागतार्थं सम्मुखे आगच्छन्ति इव ।

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

टिप्पणी—प्रत्युद्व्रजन्ति—अगवानी करती हैं । प्रति+उद्+लट् (प्रथम पुरुष बहुवचन) कहने का तात्पर्य यह है कि किंकिणियों की ध्वनि का श्रवण करने पर सारसों को अपने झुण्ड का शब्द ज्ञात होता है । अतः वे उस ध्वनि का अनुसरण करने हेतु ऊपर की ओर उड़ते हैं । ऐसा भान होता है कि वे मानों तुम्हारे स्वागत के लिए आ रहे हैं ।

खम्—आकाश में । 'नभः खं श्रावणो नभाः' इत्यमरः ।

एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ॥३४॥

अन्वय पेशलमध्यया अपि त्वया घटाम्बुसंवर्धितबालचूता उन्मुखकृष्णसारा चिराद् दृष्टा एषा पञ्चवटी मे मनः आनन्दयति ।

शब्दार्थ—पेशलमध्यया अपि—कृशकटि होते हुए भी, त्वया—तुम्हारे द्वारा, घटाम्बुसंवर्धितबालचूता—घड़े के जल से सींच-सींचकर बढ़ाये गये आम के छोटे-छोटे वृक्षों वाली, उन्मुखकृष्णसारा—ऊपर की ओर मुख किये हुए कृष्णमृगों वाली, चिराद् दृष्टा—चिरकाल के बाद देखी गयी, एषा पञ्चवटी—यह पञ्चवटी, मे—मेरे, मनः—मन को, आनन्दयति—आनन्दित कर रही है ।

भाषानुवाद—कृशकटि होते हुए भी तुम्हारे द्वारा घड़े के जल से सींच-सींचकर बढ़ाये गये आम के छोटे-छोटे वृक्षों वाली, ऊपर की ओर मुख किये हुए कृष्ण सार (चितकबरे मृग) वाली, चिरकाल के बाद देखी गयी यह पञ्चवटी मेरे मन को आनन्दित कर रही है ।

संस्कृत-व्याख्या—

पञ्चवट्याः वर्णनं करोति कविः

पेशलमध्यया अपि—पेशलं कान्तं मध्यं कटिः यस्याः तादृश्या अपि, त्वया—

भवत्या, घटाम्बुसंवर्धितबालचूता—घटनाम्बुभिः कलशवारिभिः संवर्धिताः ह्रस्वरसालवृक्षाः यत्र तादृशी, उन्मुखकृष्णसारा—उन्मुखाः अस्मदभिमुखाः कृष्णसाराः कृष्णकुरङ्गाः यत्र तादृशी, चिरात्—बहुकालादनन्तरम्, दृष्टा—अवलोकिता, दृष्टिपथ-मागता इत्यार्थः। मे—मम, मनः—चेतः, आनन्दयति—आह्लादयति ।

टिप्पणी—पञ्चवटी—वह स्थान जहाँ राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में स्थायी रूप से पर्णशाला बनाकर निवास किया था। पञ्चानां वटानां समाहारः (पञ्चवटी + ङीप्) = पञ्चवटी। अश्वत्थ, आमलक, विल्व, वट और अशोक—इन पांच वृक्षों की समुदाय को 'पञ्चवटी' कहते हैं। चिरात् दृष्टा—बहुत दिनों के बाद देखी गयी। 'चिरात्' 'सप्तमी पञ्चम्यौ कारकमध्ये' सूत्र से पञ्चवटी विभाजित हुई। यह पञ्चवटी का विशेषण है।

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरङ्गवातेन विनीतखेदः ।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ॥३५॥

अन्वय—अत्र अनुगोदं मृगया निवृत्तः तरङ्गवातेन विनीतखेदः रहः त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा (सन् अहं) वानीरगृहेषु सुप्तः (इति) स्मरामि ।

शब्दार्थ—अत्र—यहाँ (इस पञ्चवटी में), अनुगोदम्—गोदावरी नदी के पास, मृगया निवृत्तः—शिकार से लौटकर, तरङ्गवातेन—लहरों की (शीतल) वायु से, विनीत खेदः—थकान मिटाकर, रहः—एकन्त में, त्वदुत्सङ्गनिषण्ण-मूर्धा सन्—तुम्हारी गोद में सिर को रखकर, वानीरकुञ्जेषु—बेंत के कुञ्जों में, सुप्तः—सोया करता था, इति—यह, स्मरामि—स्मरण कर रहा हूँ।

भाषानुवाद—यहाँ (पञ्चवटी में) गोदावरी के पास शिकार से लौटकर और लहरों की (शीतल) वायु से थकान मिटाकर (मैं) एकान्त में तुम्हारी गोद में (अपना) सिर रखकर बेंत के कुञ्जों में सोया करता था, यह स्मरण कर रहा हूँ।

**संस्कृत-व्याख्या**—

'रामः पञ्चवट्याः निवास-कालस्य सुखस्य स्मरणं करोति' इति वर्णनं श्लोकेऽस्मिन् दृश्यताम्—

अत्र—पञ्चवट्याम्, अनुगोदम्—गोदावर्य्याः समीपे, मृगयां निवृत्तः—आखेटप्रत्यागतः, तरङ्गवातेन--वीचिवायुना, विनीत खेदः—अपनीतश्रमः, रहः—एकान्ते, त्वदुत्सङ्गनिषण्णामूर्धा - तव उत्सङ्गे क्रोडे निषण्णः निवष्टः मूर्धा शिरः येनतादृशः (सन् अहम्), वानीरकुञ्जेषु:—वञ्जुलगेहेषु, सुप्तः—प्रसुप्तः, इति, स्मरामि—स्मरणं करोमि। स्मृतिपथमानयामि इति भावः।

टिप्पणी—अनुगोदम्—गोदावरी के समीप। गोदावर्य्याः समीपे इति अनुगोदम्। अत्र 'अनुर्यत्समया' इति सूत्रेण अव्ययीभावसमासः। स्मरामि—स्मरण करता हूँ। स्म् + लट् + उत्तम—पुरुष + एकवचन। 'यहाँ इति' इस पद का अध्याहार करके वाक्यार्थ को 'स्मरामि' का कर्म मान लेना चाहिए यानी 'मैं' जो शयन करता था, उसका स्मरण हो रहा है।

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥३६॥

**अन्वय**—यः भ्रूभेदमात्रेण नहुषं मघोनः पदात् प्रभ्रंशयां चकार, आविलाम्भः परिशुद्धिहेतोः तस्य मुनेः भौमः स्थानपरिग्रहः अयम्।

**शब्दार्थ**—यः—जिस (अगस्त्यमुनि) ने, भ्रूभेदमात्रेण—केवल भौंहे टेढ़ी करने से ही, नहुषम्—नहुष को, मघोनः पदात्—इन्द्र पद से, प्रभ्रंशयां चकार—च्युत कर दिया, आविलाम्भः—(वर्षा के) मलिन जल की, परिशुद्धिहेतोः—शुद्धि के कारण स्वरूप, तस्य मुनेः—उस मुनि (अगस्त्य) का, भौमः—पार्थिव, भूमि पर स्थित, स्थानपरिग्रहः—आश्रम स्थान, अयम्—यह।

**भाषानुवाद**—जिस अगस्त्यमुनि ने केवल भौंहे टेढ़ी करने से ही नहुष को इन्द्र-पद से च्युत कर दिया, (वर्षा के) मलिन जल की शुद्धि के कारणस्वरूप उस मुनि का भूमि पर स्थित यह आश्रम है।

संस्कृत-व्याख्या—

अगस्त्यमुनेः आश्रमस्य वर्णनं करोति कविः—

यः—अगस्त्यः, भ्रूभेदमात्रेण—भ्रूमङ्गमात्रेणैव, नहुषम्—एतन्नामकं राजानम् इत्यर्थः। मघोनः—इन्द्रस्य, पदात्—स्थानात्, प्रभ्रंशयां चकार—प्रभ्रंशयति स्म, पातयामास इत्यर्थः। आविलाम्भः परिशुद्धहेतोः—कलुष-जलप्रसादहेतोः, तस्य—अमुष्य, मुनेः—ऋषेः, अगस्त्यस्य इत्यर्थः। भौमः—भूमि सम्बन्धी, स्थानपरिग्रहः—आश्रम् स्थानम्, अयम्—एषः। आश्रमोऽयं दृश्यते इति भावः।

अत्रोदत्तालङ्कारः।

टिप्पणी—नहुषम्—नहुष को। नहुष पुरुवंशी राजा था। उसने अपने तप से इन्द्रासन को प्राप्त किया था। पर, इन्द्रासन को प्राप्त कर वह मदान्ध हो गया। उसने इन्द्राणी का शील हरण करना चाहा। गुरुओं के परामर्श से इन्द्र ने सहस्र ब्राह्मणों की सवारी पर अपने पास आने के लिए नहुष से कहा। शिविका ढोते समय नहुष ने ब्राह्मणों से शीघ्र चलने के लिए 'सर्प सर्प' कहा। यह सुनकर अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर उसे 'सर्प' हो जाने का शाप दे दिया। इस तरह नहुष को इन्द्र पद से हाथ धोना पड़ा।

आविलाम्भः परिशुद्धिहेतोः—(वर्षा के) मलिन जल की शुद्धि के हेतु-भूत। कहने का तात्पर्य यह है कि अगस्त्य तारा दक्षिणाकाश में दीख पड़ता है। उसका उदय शरद् ऋतु में होता है। उदय काल से ही वर्षा का गन्दा जल शुद्ध होने लगता है।

आविलम् अम्भः आविलाम्भः (कर्मधारय समास), आविलाम्भसः परिशुद्धिः आविलाम्भः परिशुद्धिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्याः हेतुः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य। यह अगस्त्य मुनि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा ॥ ३७ ॥

अन्वय—अनिन्द्यकीर्तेः तस्य आक्रान्तविमानमार्गं हविर्गन्धि त्रेताग्निधूमाग्रं घ्रात्वा रजोविमुक्तः मे आत्मा लघिमानं समश्नुते ।

शब्दार्थ—अनिन्द्यकीर्ते—पवित्र कीर्त्ति वाले, तस्य—उस (अगस्त्य) मुनि के, आक्रान्तविमानमार्गम्—विमान के मार्ग को भी पार कर, हविर्गन्धि—हवन द्रव्यों की सुगन्धि से युक्त, त्रेताग्निधूमाग्रम्—त्रेताग्नि की धूमशिखा को, घ्रात्वा—सूँघकर, रजोविमुक्तः—रजोगुण से मुक्त, मे आत्मा—मेरी आत्मा, लघिमानं समश्नुते—लघुत्व को प्राप्त कर रही है ।

भाषानुवाद—पवित्र कीर्त्ति वाले उस अगस्त्य मुनि की, विमान के मार्ग को भी पार कर हवन-द्रव्यों की सुगन्धि से युक्त त्रेताग्नि की धूमशिखा को सूँघकर अर्थात् पवित्र होकर रजोगुण से मुक्त मेरी आत्मा लघुत्व को प्राप्त कर रही है यानी हल्कापन का अनुभव कर रही है ।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् कविकालिदासः अगस्त्याश्रमस्य होमस्य वर्णनं कृतवान् अस्ति ।

रामः सीतां प्रति कथयति—अनिन्द्यकीर्तेः—न निन्द्यकीर्तेः, तस्य—अगस्त्यमुनेः, आक्रान्तविमानमार्गम्—परिव्याप्तगगनयानपन्थानम्, हविर्गन्धि—हविषः पदार्थस्य गन्धः सौरभं, यस्मिन् तादृशम्, त्रेताग्निधूमाग्रम्—अग्नित्रयधूमशिखरभागम्, घ्रात्वा—आघ्राय, रजोविमुक्तः—रजोगुणरहितः, मे—मम, आत्मा—मनः, लघिमानम्—लघुत्वम्, समश्नुते—प्राप्नोति ।

टिप्पणी—त्रेताग्निधूमाग्रम्—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणा—इन तीन अग्नियों के धूम का अग्रभाग । त्रीन् भेदान् एति प्राप्नोति इति त्रेता । त्रेता चासौ अग्निः त्रेताग्निः (कर्मधारय समास) तस्य धूमः, तस्य अग्रम् (षष्ठी तत्पुरुष समास) । 'अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरः । रजोविमुक्तः—रजोगुण से रहित । रजसो विमुक्तः रजो विमुक्तः (षष्ठी तत्पुरुष समास) । समश्नुते—व्याप्त अथवा प्राप्त करता है । सम् + अश् + लट् + प्रथम पुरुष + एकवचन ।

एतन्मुनेर्मानिनि ! शतकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥ ३८ ॥

अन्वय—मानिनि शातकर्णेः मुनेः पञ्चाप्सरो नाम पर्यन्तवनम् एतत् विहारवारि विदूरात् मेघान्तरालक्ष्य इन्दुबिम्बम् इव आभाति ।

शब्दार्थ—मानिनि—हे मानिनि !, शातकर्णेः मुनेः—शातकर्णि मुनि का, पञ्चाप्सरो नाम—पञ्चाप्सर नाम का, एतत् विहारवारि—यह क्रीड़ा-जलाशय, पर्यन्तवनम्—वन से परिवेष्टित, विदूरात्—दूर से, मेघान्तरालक्ष्य इन्दुबिम्बम् इव—मेघों के बीच कुछ-कुछ दीख पड़ने वाले चन्द्रमण्डल की तरह, आभाति—सुशोभित हो रहा है ।

भाषानुवाद—हे मानिनि ! शातकर्णि मुनि का पञ्चाप्सर नामक यह क्रीड़ा-जलाशय जो वन से परिवेष्टित है, दूर से मेघों के बीच कुछ-कुछ दीख पड़ने वाले चन्द्र-मण्डल की तरह सुशोभित हो रहा है ।

संस्कृत-व्याख्या—

पञ्चाप्सरनामकस्य जलाशयस्य वर्णनं करोति कविकुलगुरुकालिदासः—

मानिनि—हे मानिनि !, शातकर्णेः—एतन्नामकस्य, मुनेः—ऋषेः, पञ्चाप्सरो नाम—पञ्चाप्सर इति नाम्ना प्रसिद्धम्, पर्यन्तवनम्—पर्यन्त-काननम्, एतत्—इदम्, विहारवारि—क्रीड़ासरः, विदूरात्—सुदूरात् विप्रकृष्टात् वा, मेघान्तरालक्ष्यम्—मेघानां जीमूतानाम् अन्तरे मध्ये आलक्ष्यम् ईषद् दृश्यम्, इन्दुबिम्बम् इव—चन्द्रमण्डलम् इव, आभाति—शोभते ।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो वर्तते ।

टिप्पणी—पञ्चाप्सरः—पञ्च अपसरसः यस्मिन् तत् पञ्चाप्सरः (बहुव्रीहि समास) । यह उस जलाशय का नाम है, जिसे शातकर्णि नामक मुनि ने अपने तपोबल से बनाया था । कहते हैं कि शातकर्णि मुनि की उग्र तपस्या से सारे देवता भयभीत हो गये । आपस में विचार कर सभी देवताओं ने एक रास्ता खोज निकाला । उन्होंने मुनि की तपस्या भङ्ग करने के लिए पाँच अप्सराएँ भेजीं । उनके वशीभूत होकर मुनि ने उनके जल-विहार के लिए एक जलाशय का निर्माण किया, जिसका नाम 'पञ्चाप्सर' पड़ा ।

विदूरात्—बहुत दूर से । यहाँ 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई ।

पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटवन्धम् ॥ ३९ ॥

**अन्वय**—पुरा दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः मृगैः सार्धं चरन् स ऋषिः समाधिभीतेन मघोना पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् उपनीतः किल।

**शब्दार्थ**—पुरा पूर्वकाल में, दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः—मात्र कुश के अङ्कुरों को खाकर, मृगैः सार्धम्—मृगों के साथ, चरन्—घूमने वाले, सः ऋषिः—वे शातकर्णि ऋषि, समाधिभीतेन—समाधि से भयभीत यानी उग्र तपस्या से भयभीत, मघोना इन्द्र के द्वारा, पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्—पाँच अप्सराओं के यौवन-रूपी कपट-जाल में, उपनीतः किल—फँसा दिये गये।

**भाषानुवाद**—पूर्वकाल में मात्र कुश के अङ्कुरों को खाकर मृगों के साथ घूमने वाले वे शातकर्णि ऋषि समाधि से भयभीत यानी उग्र तपस्या से भयभीत इन्द्र के द्वारा पाँच अप्सराओं के यौवन-रूपी कपट-जल में फँसा दिये गये।

**संस्कृत-व्याख्या**—

'पञ्चानाम् अप्सरसां पाशे शातकर्णिमुनिः केन प्रकारेण बद्धवान्' इति वर्णनं दृश्यतां श्लोकेऽस्मिन्—

पुरा—पूर्वस्मिन् काले, दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः—तन्मात्राहारः, मृगैः सार्धम्—हरिणैः साकम्, चरन्—विचरन्, सः—असौ, ऋषिः—मुनिः, शातकर्णिमुनिः इत्यर्थः। समाधिभीतेन—तपसो भयमाप्तेन, मघोना—आखण्डलेन, पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्—पञ्च च पञ्च संख्याकाः अप्सरसः स्वर्गवेश्याः तासां यौवनं तारुण्यं तदेव कूटबन्धः उन्माथः तम्, उपनीतः—प्रापितः, किल—निश्चयेन।

अत्र रूपकालङ्कारो वर्तते।

**टिप्पणी**—पुरा—पूर्वकाल में। पुरा+क। यह पद अव्यय है। मृगैः सार्धम्—मृगों के साथ। अत्र सहार्थे तृतीया। 'साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः। उपनीतः—(शातकर्णिऋषि) पहुँचा दिये गये। उप+नी+क्त।

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः ।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥ ४० ॥

**अन्वय**—अन्तर्हितसौधभाजः तस्य अयं प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः वियद्गतः (सन्) पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ।

**शब्दार्थ**—अन्तर्हितसौधभाजः—छिपे हुए यानी जल के अन्दर स्थित भवन में निवास करने वाले, तस्य—उनके अर्थात् शातकर्णिमुनि के, अयं प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः—निरन्तर चलने वाले सङ्गीत का यह मृदङ्ग-नाद, वियद्गतः सन्—आकाश में पहुँचकर, पुष्पकचन्द्रशालाः—पुष्पकविमान की चन्द्रशाला को, क्षणम्—क्षणभर, प्रतिश्रुन्मुखराः करोति—प्रतिध्वनि से मुखरित कर रहा है ।

**भावानुवाद**—छिपे हुए यानी जल के अन्दर स्थित भवन में निवास करने वाले उन शातकर्णिमुनि के निरन्तर चलने वाले सङ्गीत का यह मृदङ्ग-नाद आकाश में पहुँच कर पुष्पक विमान की चन्द्रशाला को क्षणभर प्रतिध्वनि से मुखरित कर रहा है ।

**संस्कृत-व्याख्या**—

'शातकर्णिमुनेः जलमग्नप्रासादे चलन् सङ्गीतस्य मृदङ्गध्वनिः गगनं गत्वा पुष्पकस्य चन्द्रशालाः क्षणं मुखरितं करोति' इति वर्णनं दृश्यतामत्र—

अन्तर्हितसौधभाजः—जलमग्नप्रासादनिवासिनः, तस्य—शातकर्णिमुनेः, अयम्—एषः, श्रूयमाण इति भावः । प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः—प्रसक्तस्य प्रवर्तमानस्य सङ्गीतस्य नृत्यगीतवाद्यत्रयस्य मृदङ्गघोषः मृदङ्गध्वनिः, वियद्गतः—व्योमगतः, (सन्) पुष्पकचन्द्रशालाः—पुष्पकविमानशिरोगृहाणि, क्षणम्—क्षणकालम्, प्रतिश्रुन्मुखराः—प्रतिश्रुद्भिः प्रतिध्वनिः मुखराः सशब्दाः, करोति—विदधाति ।

**टिप्पणी**—अन्तर्हितसौधभाजः—छिपे हुए यानी जल के अन्दर स्थित प्रासाद में रहने वाले । अन्तर्+धा+क्त = अन्तर्हितम् । सुधया धवलितं गृहं सौधम्, सुधा+अण् । अन्तर्हितं सौधम् (कर्मधारय समास), तत् भजते

इति अन्तर्हितसौध भज्+ण्वि=अन्तर्हितसौधभाक्, तस्य। शातकर्णि मुनि ने अपने तपोबल से इस भवन को जल में बनाया था।

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः॥ ४१॥

अन्वय—नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन दान्तः असौ अपरः तपस्वी एधवतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः (सन्) तपस्यति।

शब्दार्थ—नाम्ना सुतीक्ष्णः—नाम से सुतीक्ष्ण (अति तीखे), चरितेन दान्तः—चरित्र से सौम्य, असौ अपरः तपस्वी—वे दूसरे तपस्वी, एधवतां चतुर्णां हविर्भुजाम्—इन्धन से युक्त चार अग्नियों के, मध्ये—बीच, ललाटन्तपसप्तसप्तिः—ललाट को तप्त करने वाले सूर्य से युक्त होकर यानी सूर्य की किरणों से तप्त होते हुए, तपस्यति—तपस्या कर रहे हैं।

भाषानुवाद—नाम से सुतीक्ष्ण (अति दीखे) किन्तु चरित्र से सौम्य वे दूसरे तपस्वी इन्धन से युक्त चार अग्नियों के बीच ललाट को तप्त करने वाले सूर्य से युक्त होकर यानी सूर्य की किरणों से तप्त होते हुए तपस्या कर रहे हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

सुतीक्ष्णमुनेः वर्णनं करोति कविकुलगुरुकालिदासः—

नाम्ना सुतीक्ष्णः—सुतीक्ष्णनामा, चरितेन—चरित्रेन, दान्तः—सौम्यः, असौ—सः, अपरः—अन्यः, तपस्वी—तापसः, एधवताम्—इन्धन युक्तानाम्, चतुर्णाम्—चतुः संख्याकानाम्, हविर्भुजाम्—अग्नीनाम्, मध्ये—मध्यभागे, ललाटन्तपसप्तसप्तिः—मस्तकन्तपसूर्यः (सन्), तपस्यति—तपश्चरति, तपस्यां करोति इत्यर्थः।

टिप्पणी—सुतीक्ष्णः—सुतीक्ष्ण। सुतीक्ष्ण दण्डकारण्य मुनि का नाम था। इसका शाब्दिक अर्थ है—अत्यन्त तीखा। सुष्ठु तीक्ष्णः सुतीक्ष्णः (प्रादि समास)।

चतुर्णां हविर्भुजाम्—चार अग्नियों के। हविः भुज्यते इति हविर्भुजः। हविस्+भुज्+क्विप्, तेषाम्। अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके

ऊपर से सूर्य की किरणों के ताप को सहते हुए जो तप किया जाता है, उसे 'पञ्चाग्निसाधन' कहते हैं। यह अत्यन्त कठिन तप है। सुतीक्ष्णमुनि यही तप कर रहे थे।

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥४२॥

**अन्वयं**—जनितेन्द्रशङ्कम् अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्ध-सन्दर्शितमेखलानि सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि विकर्तुम् अलं न (बभूवुः)।

**शब्दार्थ**—जनितेन्द्रशङ्कम्—इन्द्र को शङ्का उत्पन्न करने वाले, अमुम्—इस सुतीक्ष्ण मुनि को, सहासप्रहितेक्षणानि—हास्ययुक्त कटाक्ष करने वाली, व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि—छल से करधनी के आधे भाग को दिखलानेवाली, सुराङ्ग—नाविभ्रमचेष्टितानि—देवाङ्गनाओं की विलासयुक्त चेष्टाएँ, विकर्तुम् अलं न (बभूवुः)—विकृत करने में समर्थ न हो सकीं यानी तपोभ्रष्ट करने में समर्थ न हो सकीं।

**भाषानुवाद**—इन्द्र को शङ्का उत्पन्न करने वाले इस सुतीक्ष्णमुनि को, हास्ययुक्त कटाक्ष करने वाली और छल से करधनी के आधे भाग को दिखलाने वाली देवाङ्गनाओं की विलासयुक्त चेष्टाएं विकृत करने में समर्थ न हो सकीं यानी तपोभ्रष्ट करने में समर्थ न हो सकीं।

**संस्कृत-व्याख्या**—

'इन्द्रेण प्रेषिताः अप्सरसः सुतीक्ष्णं स्खलयितुं न समर्थाः' इत्यस्य वर्णनं विद्यते श्लोकेऽस्मिन्—।

जनितेन्द्रशङ्कम्—उत्पादिताखण्डलशङ्कम्, अमुम्—तम्, सुतीक्ष्णम् इत्यर्थः। सहासप्रहितेक्षणानि—सहासं सस्मितं प्रहितानि प्रेषितानि ईक्षितानि दृष्टयो येषु तानि, व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि—व्याजेन छलेन अर्धम् ईषत् सन्दर्शिता प्रदर्शिता मेखला रशना येषु तानि, सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि—सुराङ्गनानाम् अप्सरसां विभ्रमाः विलासाः एव चेष्टितानि चेष्टाः, विकर्तुम्—स्खलयितुम्, अलम्—समर्थानि, न—नहि बभूवुः इति शेषः।

श्लोकेऽस्मिन् रूपकालङ्कारो वर्तते।

टिप्पणी—सहासप्रहितेक्षणानि—जिनमें हास के साथ कटाक्ष किये गये। प्र+धा+क्त—'दधातेर्हिः' सूत्र से धा के स्थान में हि आदेश होकर 'प्रहित' यह रूप निष्पन्न हुआ। हासेन सहितं सहासम् (तेन सहेति बहुव्रीहि समासः), सहासं यथा स्यात् तथा प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि (व्यधिकरण बहुव्रीहि समासः)। विकर्तुम्—स्खलित करने के लिए या डिगाने के लिए। वि+कृ+तुमुन् (तुम्)।

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥४३॥

अन्वय—ऊर्ध्वबाहुः एषः अक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावं सव्येतरं भुजं मे सभाजने इतः प्राध्वं प्रयुङ्क्ते।

शब्दार्थ—ऊर्ध्वबाहुः—बाहु को ऊपर उठाये हुए, एषः—यह, ये सुतीक्ष्णमुनि, अक्षमालावलयम्—रुद्राक्ष की माला को कंगन बनाये हुए, मृगाणां कण्डूयितारम्—मृगों को खुजलाने वाले, कुशसूचिलावम्—कुशों के अग्रभाग को तोड़नेवाले, सव्येतरं भुजम्—दाहिने हाथ को, मे—मेरे, सभाजने—सम्मान में, इतः—इधर ही, प्राध्वम्—अनुकूल भाव से, प्रयुङ्क्ते—प्रयुक्त कर रहे हैं।

भाषानुवाद—बाहु को ऊपर उठाये ये सुतीक्ष्ण मुनि रुद्राक्ष की माला को कंगन बनाये हुए, मृगों को खुजलाने वाले और कुशों के अग्रभाग को तोड़नेवाले (अपने) दाहिने हाथ को मेरे सम्मान में इधर ही अनुकूल भाव से प्रयुक्त कर रहे हैं यानी लगा रहे हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

'सुतीक्ष्णमुनिः हस्तम् उत्थाप्य रामस्य सम्मानं कुर्वन्नस्ति' इत्यस्य वर्णनं कविना कृतमत्र—

ऊर्ध्वबाहुः—ऊर्ध्वभुजः, एषः—अयम्, सुतीक्ष्णः इत्यर्थः। अक्षमालावलयम्—रुद्राक्षमालाकङ्कणम्, मृगाणाम्—हरिणानाम्, कण्डूयितारम्—खर्जयितारम्, कुशसूचिलावम्—कुशाः दर्भाः एव सूचयः ताः लुनाति इति कुशसूचिलवः तं दर्भाङ्कुरच्छेत्तारम्, सव्येतरम्—दक्षिणम्, भुजम्—बाहुम्,

मे—मम, सभाजने—सम्माने, इतः—अस्यामेव दिशायाम्, प्राञ्चम्—आनुकूल्यार्थकम्, मार्गानु—कूलम् इत्यर्थः । प्रयुङ्क्ते—प्रेरयति ।

टिप्पणी—अक्षमालावलयम्—रुद्राक्षमाला का कंगन धारण किये हुए । अक्षाणां माला अक्षमाला (षष्ठी तत्पुरुष समास), अक्षमाला एव वलयं यस्य स अक्षमालावलयः (बहुव्रीहि समास), तम् । सभाजने—सम्मान में । सभाज् + ल्युट् (अन) = सभाजनम्, तस्मिन् ।

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किञ्चित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधत्ते ॥ ४४ ॥

अन्वय—एषः वाचंयमत्वात् मम प्रणतिं किञ्चित् मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानव्यवधानमुक्तां दृष्टिं पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधत्ते ।

शब्दार्थ—एषः—यह, ये सुतीक्ष्णमुनि, वाचंयमत्वात्—मौनव्रती होने के कारण, मम—मेरे, प्रणतिम्—प्रणाम को, किञ्चित् मूर्ध्नः कम्पेन—कुछ सिर हिलाने द्वारा, प्रतिगृह्य—स्वीकार कर, विमानव्यवधानमुक्ताम्—(पुष्पक) विमान के व्यवधान से मुक्त, दृष्टिम्—दृष्टि को, पुनः—फिर, सहस्रार्चिषि—सूर्य में, सन्निधत्ते—अच्छी तरह लगा रहे हैं ।

भाषानुवाद—ये सुतीक्ष्ण मुनि मौनव्रती होने के कारण मेरे प्रणाम को कुछ सिर हिलाने द्वारा स्वीकार कर पुष्पक विमान के व्यवधान से मुक्त दृष्टि को फिर सूर्य में अच्छी तरह लगा रहे हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—

'मौनव्रती मुनिः सुतीक्ष्णः केवलं शिरः कम्पयित्वा रामस्य प्रणाम स्वीकृतवान्' इत्यस्य वर्णनं कृतं कविकालिदासेन अत्र—

एषः—अयम्, सुतीक्ष्णः इत्यर्थः । वाचंयमत्वात्—मौनव्रतित्वात्, मम—मे, प्रणतिम्—प्रणामम्, किञ्चित्—ईषत्, मूर्ध्नः—शिरसः, कम्पेन—प्रकम्पेन, प्रतिगृह्य—स्वीकृत्य, विमानव्यवधानमुक्ताम्—पुष्पकविमान-तिरोधानविमुक्ताम्, दृष्टिम्—ईक्षणम्, पुनः—भूयः, सहस्रार्चिषि—सूर्ये, सन्निधत्ते—सम्यक् दधाति ।

टिप्पणी—सहस्रार्चिषि—सूर्य में। सहस्रम् अर्चींषि यस्य स सहस्रार्चिः, तस्मिन्। उक्त पद का शाब्दिक अर्थ है—जिसके सौ किरणें हों ऐसे सूर्य में।

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः।
चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्॥ ४५॥

अन्वय—शरण्यं पावनम् अदः तपोवनम् आहिताग्नेः शरभङ्गनाम्नः यः चिराय अग्निं समिद्भिः सन्तर्प्य मन्त्रपूतां तनुम् अपि अहौषीत्।

शब्दार्थ—अदः—यह, शरण्यम्—शरण देने वाला, पावनम्—पवित्र, तपोवनम्—तपोवन, आहिताग्नेः—अग्निहोत्र करने वाले, शरभङ्गनाम्नः—शरभङ्ग नामक (मुनि) का, यः—जो, जिन्होंने, चिराय—चिरकाल तक, अग्निम्—अग्नि को, समिद्भिः—समिधाओं से, सन्तर्प्य—संतुष्ट कर, मन्त्रपूतां तनुम् अपि मन्त्रों से पवित्र शरीर को भी, अहौषीत—(उसमें) हवन कर दिया।

भाषानुवाद—यह शरण देने वाला एवं पवित्र तपोवन अग्निहोत्र करने वाले शरभङ्ग नामक मुनि का है, जिन्होंने चिरकाल तक अग्नि को समिधाओं से संतुष्ट कर (बाद में) मन्त्रों से पवित्र शरीर को भी (उसमें) हवन कर दिया।

संस्कृत-व्याख्या—

शरभङ्गमुनेः प्रशंसां वर्णयति कविकुलगुरुकालिदासः—

अदः— तत्, शरण्यम्–शरणे रक्षणे साधुः, पावनम्-पवित्रम्, तपोवनम्—धर्मारण्यम्, आहिताग्नेः—आहिताः नियमेन स्थापिताः अग्नयः पावकाः येन तादृशस्य, शरभङ्ग नाम्नः—शरभङ्गेति नामधेयस्य, यः—मुनिः, चिराय—बहुकालपर्यन्तम्, अग्निम्—वह्निम्, समिद्भिः—काष्ठैः, सन्तर्प्य—तर्पयित्वा, मन्त्रपूताम्—मन्त्रैः पूतां शुद्धाम्, तनुम् अपि—देहमपि, अहौषीत्—हुतवान्।

टिप्पणी—शरण्यम्—शरण देने वाला। शरणे साधु इति शरण्यम्, आहिताग्नेः—अग्निहोत्र करने वाले का। आ+धा+क्त=आहितः। आहितः अग्निः येन स आहिताग्निः (बहुव्रीहि समास), तस्य।

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु॥ ४६॥

अन्वय—अधुना तस्य अतिथीनां सपर्या छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु अमीषु पादपेषु सुपुत्रेषु इव स्थिता।

शब्दार्थ—अधुना—इस समय, तस्य—उस (शरभङ्ग मुनि) की, अतिथीनां सपर्या—अतिथि-पूजा, अतिथि-सत्कार करने का भार, छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु—छाया से (थके बटोहियों के) मार्ग के श्रम को दूर करने वाले, भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु—अति मधुर फलों से लदे हुए, अमीषु पादपेषु—इन वृक्षों पर, सुपुत्रेषु इव स्थिता—सुपुत्रों की तरह आ पड़ा।

भाषानुवाद—इस समय उस (शरभङ्ग मुनि) के अतिथि-सत्कार करने का भार छाया से (थके बटोहियों के) मार्ग के श्रम को दूर करने वाले तथा अति मधुर फलों से लदे हुए इन वृक्षों पर सुपुत्रों की तरह आ पड़ा।

जिस तरह पिता के परलोक सिधारने पर अतिथियों के सत्कार करने का भार सुपुत्र ग्रहण कर लेते हैं, उसी तरह शरभङ्ग मुनि के स्वर्गवास हो जाने पर आश्रम के वृक्ष अपनी छाया, फल आदि से आये हुए अतिथियों का सेवा-सत्कार कर रहे हैं।)

संस्कृत-व्याख्या—

'शरभङ्गे परलोकं प्रस्थिते अधुना आश्रमस्य वृक्षाः अतिथि-सत्कारं कुर्वन्ति' इति वर्णनं दृश्यतामत्र—

अधुना—साम्प्रतम्, तस्य—शरभङ्गमुनेः, अतिथीनाम्—अभ्यागतानाम्, सपर्या—परिचर्या, छायाविनाताध्वपरिश्रमेषु—छायापनीतमार्गश्रमेषु, भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु—भूयिष्ठानि बहुतमानि सम्भाव्यानि श्लाघ्यानि फलानि येषां तेषु, अमीषु—तेषु, पादपेषु—वृक्षेषु, सुपुत्रेषु इव—योग्य सुतेषु इव, स्थिता—अवस्थिता।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—अधुना—अब, इस समय, आजकल। यह पद अव्यय है। 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः।

सपर्या—पूजा। सपर (पूजायाम्) + यक् + अ + टाप्।

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि ! चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥ ४७ ॥

अन्वय—बन्धुरगात्रि ! धारास्वनोदगारिदरीमुखः शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः असौ चित्रकूटः दृप्तः ककुद्मान् इव मे चक्षुः बध्नाति ।

शब्दार्थ—बन्धुरगात्रि—हे सुन्दर शरीर वाली (सीते !), धारास्वनोद्गारिदरीमुखः—धारा से शब्द उगलने वाली गुफा रूप मुख वाला अर्थात् झरनों के प्रवाह से गुञ्जरित गुफा रूप मुख वाला, शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदप्रपङ्कः—शिखर के अग्रभाग में लगे हुए मेघरूप वप्रक्रीड़ा के कीचड़ वाला, असौ—वह, चित्रकूटः—चित्रकूट, दृप्तः ककुद्मान् इव—उन्मत्त साँड़ की तरह, मे—मेरी, चक्षुः—दृष्टि को, बध्नाति—बाँध रहा है ।

भाषानुवाद—हे सुन्दर शरीर वाली (सीते !) धारा से शब्द उगलने वाली गुफा रूप मुखवाला अर्थात् झरनों के प्रवाह से गुञ्जरित गुफा रूप मुखवाला और शिखर के अग्रभाग में लगे हुए मेघ रूप वप्रक्रीड़ा के कीचड़ वाला यह चित्रकूट उन्मत्त साँढ की तरह मेरी दृष्टि को बाँध रहा है यानी आकर्षित कर रहा है । (मदमस्त साँढ़ की तरह यह चित्रकूट मेरे चित्त को अतिशय हर्षित कर रहा है । गुफा ही इसका मुख है, इससे प्रवाहित होने वाली जलधारा का शब्द ही इसकी डकार है, चोटी ही इसके सींग हैं और उस पर आच्छादित बादल ही मानों सींगों पर लगा हुआ कीचड़ है ।)

संस्कृत-व्याख्या—

चित्रकूटपर्वतस्य एकस्य महावृषभस्य रूपेण वर्णनं करोति कविः—

बन्धुरगात्रि—हे बन्धुरगात्रि !, सुन्दरी इत्यर्थः । धारास्वनोद्गारिदरीमुखः—निर्झरप्रवाहशब्दोद्गारिगुहामुखः, शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः—शिखराग्रसंलग्नमेघवप्रक्रीडाकर्दमः, असौ—सः, चित्रकूटः—एतन्नामकः पर्वतः, दृप्तः—उन्मत्तः मदोद्धतः वा, ककुद्मान् इव—महावृषभः इव, मे—मम, चक्षुः—दृष्टिम्, बध्नाति—आसक्तं करोति ।

श्लोकेऽस्मिन् रूपकालङ्कारः श्लेषालङ्कारः उपमालङ्कारश्च वर्तन्ते ।

टिप्पणी—शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः—(पर्वत-पक्ष में) शिखर के अग्र-भाग पर वप्रक्रीड़ा की तरह लगे हुए मेघ वाला (साँढ़-पक्ष में) सींगों के अग्रभाग पर बादल की तरह लगे हुए वप्रक्रीड़ा की कीचड़ वाला। हाथी या साँढ़ अपने माथे से मिट्टी के टीले को उखाड़ने का जो खेल करता है, उसे 'वप्रक्रीडा' कहते हैं।

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः ॥ ४८ ॥

अन्वय— एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा विदूरान्तरभावतन्वी मन्दाकिनी-नाम सरित् नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावली इव भाति।

शब्दार्थ—एषा—यह, प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा—प्रसन्न और कम्पन रहित प्रवाह वाली यानी शान्त प्रवाह वाली, विदूरान्तरभावतन्वी—दूरवर्ती होने के कारण पतली दीख पड़ने वाली, मन्दाकिनी नाम सरित्—मन्दाकिनी नाम की नदी, नगोपकण्ठे—(चित्रकूट) पर्वत के समीप, भूमेः—पृथिवी के, कण्ठगता—गले में पड़ी, मुक्तावली इव—मोतियों की माला की तरह, भाति—शोभित हो रही है।

भाषानुवाद—यह प्रसन्न और कम्पन रहित प्रवाह वाली यानी शान्त प्रवाह वाली तथा दूरवर्ती होने के कारण पतली दीख पड़ने वाली मन्दाकिनी नाम की नदी (चित्रकूट) पर्वत के समीप पृथिवी के गले में पड़ी मोतियों की माला की तरह शोभित हो रही है।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् कविः मन्दाकिनीनद्याः वर्णनं करोति—

एषा - इयम्, प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा—प्रसन्नः निर्मलः स्तिमितो निस्पन्दः प्रवाहो यस्याः सा, विदूरान्तरभावतन्वी—दूरदेशवर्तित्वात्तनुत्वनावभासमाना, मन्दाकिनी नाम—एतन्नामका, सरित्—निम्नगा, नगोपकण्ठे—चित्रकूट-पर्वतसमीपे, भूमेः—पृथिव्याः, कण्ठगता—ग्रीवानिहिता, मुक्तावली—मौक्तिकमाला, इव—यथा, भाति—प्रतिभाति।

अत्रोपमालङ्कारः।

**टिप्पणी**—मन्दाकिनी—चित्रकूट की प्रसिद्ध नदी। मन्दाकिनी को आकाशगङ्गा भी कहते हैं। 'मन्दाकिनी वियद्गङ्गा' इत्यमरः। उसी आकाशगङ्गा को अनसूया ने चित्रकूट में लाया था। यही कारण है कि लोग इसे 'मन्दाकिनीगङ्गा' कहते हैं। नगोपकण्ठे—पर्वत के समीप। न गच्छति इति नगः। नञ्+गम्+ड। 'नगोऽप्राणिष्व--न्यतरस्याम्' सूत्र से नञ् समास, प्रकृतिभाव तथा 'न लोपो नञः' सूत्र से नकार का लोप न होकर 'नग' यह रूप हुआ। कण्ठस्य समीपम् उपकण्ठम् (अव्ययीभाव समास), नगस्य उपकण्ठम् नगोपकण्ठम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मिम्।

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते ॥ ४६ ॥

**अन्वय**—अनुगिरम् अयं सुजातः तमालः यस्य सुगन्धि प्रवालम् आदाय मया ते यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः परिकल्पितः।

**शब्दार्थ**—अनुगिरम्—पर्वत के समीप, अयम्—यह, सुजातः तमालः—सुन्दर उगा हुआ तमालवृक्ष, यस्य, जिसके, सुगन्धि प्रवालम्—सुगन्धि से युक्त पल्लव को, आदाय—लेकर, मया—मैंने, ते—तुम्हारे, यवाङ्कुरापाण्डु-कपोलशोभी—जो के अङ्कुर की तरह हल्के पीले गालों पर शोभित होने वाला, अवतंसः—कर्णाभूषण (झूमका), परिकल्पितः—बनाया।

**भाषानुवाद**—(चित्रकूट) पर्वत के समीप यह सुन्दर उगा हुआ तमाल-वृक्ष है, जिसके सुगन्धि से युक्त पल्लव को लेकर मैंने तुम्हारे जौ के अङ्कुर की तरह हल्के पीले गालों पर शोभित होने वाला कर्णभूषण बनाया था।

**संस्कृत-व्याख्या**—

श्लोकेऽस्मिन् तस्य तमालवृक्षस्य वर्णनं वर्तते यस्य किसलयमादाय रामः कर्णाभूषणं रचयित्वा सीतायाः कर्णे परिधापितवान्—

अनुगिरम्—गिरेः पर्वतस्य समीपे, चित्रकूटपर्वतस्य समीपे इत्यर्थः। अयम्—एषः, सुजातः—सुष्ठु उत्पन्नः, तमालः—वृक्षविशेषः, यस्य—तमाल-वृक्षस्य इत्यर्थः। सुगन्धि—शोभनगन्धोपेतम्, प्रवालम्—किसलयम्, आदाय

—गृहीत्वा, मया—रावेण, ते—तव, यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी—यवाङ्कुरवत् आपाण्डु ईषत् धवलः यः कपोलः गण्डः तत्र शोभते इति तथाभूतः, अवतंसः—कर्णाभूषणाम्, परिकल्पितः—विरचितः ।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो वर्तते ।

टिप्पणी—अनुगिरम्—पर्वत के समीप । गिरेः समीपम् अनुगिरम् (अव्ययीभाव समास), 'गिरेश्च सेनकस्य' इस सूत्र से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय ।

अवतंसः—कर्णाभूषण, कर्णफूल । अवतंस्यते भूष्यते अनेन इति अवतंसः । अव + तंस् + घञ् ।

अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम् ।
वनं तपः साधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ॥ ५० ॥

अन्वय—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् अपुष्पलिङ्गात् फलबन्धिवृक्षम् आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् एतत् अत्रेः तपः साधनं वनम् ।

शब्दार्थ—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम—बिना दण्डभय के ही शान्त जन्तुओं वाला, अपुष्पलिङ्गात्—बिना फूले ही, फलबन्धिवृक्षम्—वृक्षों में फल लगने वाला, अतिशय प्रबल प्रभाव को प्रकट करने वाला, एतत्—यह, अत्रेः—अत्रिमुनि का, तपः साधनं वनम्—तप का साधनभूत वन अर्थात् तपोवन ।

भाषानुवाद—बिना दण्डभय के ही शान्त जन्तुओं वाला, बिना फूल के ही वृक्षों में फल लगने वाला और (मुनि की तपस्या के) अतिशय प्रबल प्रभाव को प्रकट करने वाला यह अत्रिमुनि का तपः साधनभूतवन अर्थात् तपोवन है ।

संस्कृत-व्याख्या—

अत्रिमुनेः आश्रमस्य वर्णनं करोति कविः—

अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्—दण्डभयरहितविनम्रसत्त्वम्, अपुष्पलिङ्गात्—न पुष्पलिङ्गात्, फलबन्धिवृक्षम्—फलानि बध्नन्ति समुत्पद्यन्ते येषु

तादृशाः वृक्षाः तरवः यस्मिन् तत्, आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्—आविष्कृतः प्रकटितः उदग्रतरः अतिशयेन तीक्ष्णः प्रभावः सामर्थ्यं येन तादृशम्, एतत्—इदम्, अत्रेः—अत्रिमुनेः, तपः साधनम्—तपस्यायाः साधनभूतम्, वनम्—विपिनम्।

अत्र विभावनालङ्कारो विद्यते—

टिप्पणी—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्—जहाँ के (हिंसक) जन्तु दण्ड के भय के बिना ही विनम्र रहते हैं। नि + ग्रह + अप = निग्रहः। निग्रहात् त्रासः निग्रहत्रासः (पञ्चमी तत्पुरुष समास), अविद्यमानः निग्रहत्रासः येषां ते अनिग्रहत्रासः (बहुव्रीहि समास) तथाभूताश्च विनीताः (कर्मधारय समास), तादृशाः सत्त्वाः यस्मिन् तत्।

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्॥ ५१॥

अन्वय—अत्र अनसूया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्मां त्र्यम्बकमौलिमालाम् त्रिस्रोतसं तपोधनानाम् अभिषेकाय प्रवर्तयामास किल।

शब्दार्थ—अत्र—यहाँ (इस तपोवन में), अनसूया (अत्रिमुनि की पत्नी) अनसूया ने, सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्—सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमल वाली, त्र्यम्बकमौलिमालाम्—शिव के मस्तक की माला रूप, त्रिस्रोतसम्—गङ्गा को, तपोधनानाम्—तपस्वियों के, अभिषेकाय—स्नान के लिए, प्रवर्तयामास—प्रवाहित कराया।

भाषानुवाद—यहाँ (इस तपोवन में) अनसूया ने सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमलवाली और शिव के मस्तक की माला रूप गङ्गा को तपस्वियों के स्नान के लिए प्रवाहित कराया।

संस्कृत-व्याख्या—

'अत्रि-पत्नी अनसूया गङ्गां चित्रकूटे आनीतवती आसीत्' इति वर्णनम् अत्र दृश्यताम्—

अत्र—तपोवने, अनसूया—अत्रिपत्नी, सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्—

सप्तर्षीणां मरीच्यादीनां हस्तैः करैः उद्धृतानि त्रुटितानि हेमपद्मानि सुवर्ण-नलिनानि यस्याः ताम्, त्र्यम्बकमौलिमालाम्—शिवमस्तकस्रजम्, त्रिस्रोतसम्—भागीरथीम्, तपोधनानाम्—तपस्विनाम्, अभिषेकाय—स्नानाय, प्रवर्तयामास—प्रवाहयामास, किल—निश्चयेन ।

टिप्पणी—सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्—सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमल वाली । सप्त च ते ऋषयः—सप्तर्षयः । यहाँ 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' सूत्र से (तत्पुरुष समास) । सप्तर्षि ये कहलाते हैं—मरीचि, अङ्गिरस, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ । सप्तर्षीणां हस्ताः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तैः उद्धृतानि हेमपद्मानि यस्याः सा (बहुव्रीहि समास,) ताम् ।

**वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्या ।**
**निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥ ५२ ॥**

अन्वय—वीरासनैः ध्यानजुषाम् ऋषीणां समध्यासितवेदिमध्याः अमी शाखिनः अपि निवातनिष्कम्पतया योगाधिरूढा इव विभान्ति ।

शब्दार्थ—वीरासनैः—वीरासन लगाकर, ध्यानजुषाम्—ध्यान करने वाले, ऋषीणां समध्यासितवेदिमध्याः—ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित वेदियों के मध्य भाग वाले, अमी शाखिनः अपि—ये वृक्ष भी, निवातनिष्कम्पतया—वायु के अभाव के कारण निश्चलता को प्राप्त होकर, योगारूढाः इव—समाधिस्थ (ऋषियों की) तरह, विभान्ति—सुशोभित हो रहे हैं ।

भाषानुवाद—वीरासन लगाकर ध्यान करने वाले ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित वेदियों के मध्यभाग वाले ये वृक्ष भी वायु के अभाव के कारण निश्चलता को प्राप्त होकर समाधिस्थ (ऋषियों की) तरह सुशोभित हो रहे हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—

तपोवनस्य वृक्षाः मुनीनामिव समाधिसंलग्नाः प्रतीयन्ते—वीरासनैः—जयसाधनैः, ध्यानजुषाम्—समाधिसेविनाम्, ऋषीणाम्—मुनीनाम्, समध्यासितवेदिमध्याः—सम्यक् अधिष्ठितानि सम्यक् अधिष्ठानि वेदीनां

मध्यानि मध्यभागाः यैः तादृशाः, अमी — इमे, शाखिनः अपि—तरवः अपि, निवातनिष्कम्पतया—वायुरहितनिश्चलतया, योगाधिरूढाः—ध्यानभाजः, इव - यथा, विभान्ति—शोभन्ते ।

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

टिप्पणी—वीरासनैः—वीरासन लगाकर । एक पैर को एक जाँघ पर और दूसरे पैर को दूसरी जाँघ पर रखकर बैठना ही वीरासन कहलाता है । वीराणाम् आसनानि वीरासनानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), तैः । शाखिनः—वृक्ष । शाखाः विद्यन्ते एषाम् इति शाखिनः । शाखा + इनि । 'वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः' इत्यमरः ।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ।। ५३ ।।

अन्वय—त्वया पुरस्तात् यः श्याम इति प्रतीतः वटः उपयाचितः, सः अयं फलितः (सन्) सपद्मरागः गारुडानां मणीनां राशिः इव विभाति ।

शब्दार्थ—त्वया—तुमने, पुरस्तात्—पहले, यः श्याम इति प्रतीतः वटः—जिस श्याम नामक वट-वृक्ष से, उपयाचितः—प्रार्थना की थी, सः अयम्—वह यह, फलितः—फला हुआ, सपद्मरागः—पद्मरागमणियों सहित, गारुडानां मणीनां राशिः इव—मरकतमणियों की राशि के समान, विभाति—शोभायमान हो रहा है ।

भाषानुवाद—तुमने पहले जिस श्याम नामक वट-वृक्ष से प्रार्थना की थी, वही (वट-वृक्ष) फल कर पद्मरागमणियों सहित मरकत मणियों की राशि के समान शोभायमान हो रहा है ।

संस्कृत-व्याख्या—

प्रयागस्थितस्य श्यामवटवृक्षस्य वर्णनं करोति कविः—

त्वया—भवत्या, पुरस्तात्—पूर्वम्, यः, श्याम इति प्रतीतः—श्यामनामकः, वटः—न्यग्रोधः, वटवृक्षः इत्यर्थः । उपयाचितः—प्राथितः, सः—असौ, अयम्—एषः (स एव वटवृक्षः इत्यर्थः ।) फलितः—फलयुक्तः (सन्),

सपद्मरागः—पद्मरागमणिना सहितः, गारुडानां मणीनाम्—मरकतानाम्, मरकतमणीनाम् इत्यर्थः। राशिः इव—पुञ्जः इव, विभाति—राजति।

अत्रोपमालङ्कारः

टिप्पणी—फलितः—फला हुआ, फलों से युक्त। फल+इतच्। उपयाचितः—जिसकी प्रार्थना की थी अथवा मनोती मानी थी। उप+यांच्+क्त। विभाति—वि+भा+लट्+ति (प्रथम पुरुष एकवचन)।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ ५४ ॥

अन्वय—(अनवद्याङ्गि! पश्य, यमुनातरङ्गैःभिन्नप्रवाहा गङ्गा) क्वचित् प्रभालेपिभिः इन्द्रनीलैः अनुविद्धा मुक्तामयी यष्टिः इव (विभाति) अन्यत्र इन्दीवरैः उत्खचितान्तरा सितपङ्कजानां माला इव (विभाति)।

शब्दार्थ—(अनवद्याङ्गि—हे अनिन्दित शरीर वाली (सीते!), पश्य—देखो, यमुनातरङ्गैः—यमुना की (श्यामल) तरङ्गों से, भिन्नप्रवाहा गङ्गा—मिली हुई धारा वाली गङ्गा, क्वचित्—कहीं, प्रभालेपिभिः इन्द्रनीलैः—कान्ति से मण्डित इन्द्रनील मणियों से, अनुविद्धा—जड़ित, मुक्तामयी यष्टिः इव—मोतियों की लड़ी की तरह, विभाति—शोभ रही है, अन्यत्र—दूसरी ओर, इन्दीवरैः—नीलकमलों से, उत्खचितान्तरा—बीच-बीच में व्याप्त, सितपङ्कजानां माला इव—श्वेत कमलों की माला की तरह, विभाति—सुशोभित हो रही है।

भाषानुवाद—(हे अनिन्दित शरीर वाली सीते! देखो, यमुना की श्यामल तरङ्गों से मिली हुई धारा वाली गङ्गा) कहीं कान्ति से मण्डित इन्द्रनील मणियों से जड़ित मोतियों की लड़ी की तरह शोभ रही है और दूसरी ओर नीलकमलों से बीच-बीच में व्याप्त श्वेत कमलों की माला की तरह सुशोभित हो रही है।

संस्कृत-व्याख्या—

गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्य शोभायाः वर्णनं करोति कविकुलगुरुकालिदासः—

(अनवद्याङ्गि—हे अनवद्याङ्गि ! अनिन्द्यसुन्दरी ! वा, पश्य—विलोकय, यमुनातरङ्गैः—कालिन्दीवीचिभिः, भिन्नप्रवाहा—मिश्रितप्रवाहा, गङ्गा—जाह्नवी), क्वचित्—कुत्रापि, प्रभालेपिभिः—कान्तिप्रलेपिभिः, इन्द्रनीलैः—नीलमणिविशेषैः, अनुविद्धा—सहगुम्फिता, मुक्तामयी—मौक्तिकवि—निर्मिता, यष्टिः इव—हारावलिः इव, (विभाति), अन्यत्र—अन्यस्मिन् स्थाने, इन्दीवरैः—नीलोत्पलैः, उत्खचितान्तरा—सहग्रथिता, सितपङ्कजानाम्—श्वेतकमलानाम्, माला—स्रक्, इव—यथा (विभाति)।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारः उत्प्रेक्षालङ्कारश्च स्तः।

टिप्पणी—प्रभालेपिभिः—कान्ति से युक्त। प्रभया लिम्पन्ति इति प्रभालेपिनः। प्रभा + लिप्—णिनि, तैः। इन्दीवरैः—नील-कमलों से। 'इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन्' इत्यमरः।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

अन्वय—क्वचित् कादम्बसंसर्गवती प्रियमानसानां खगानां पङ्क्तिरिव (विभाति), अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भुवः चन्दनकल्पिता भक्तिः इव (विभाति)।

शब्दार्थ—क्वचित्—कहीं पर, कादम्बसंसर्गवती—श्यामल हंसों से मिले हुए, प्रियमानसानां खगानाम्—मानसप्रेमी पक्षियों की अर्थात् राजहंसों की, पङ्क्तिः इव—पङ्क्ति की तरह, (विभाति—शोभित हो रही है), अन्यत्र—दूसरी ओर, कालागुरुदत्तपत्रा—काले अगुरु से निर्मित मकरिका-पत्रों (मकराकार रचना विशेष), चन्दनकल्पिता—चन्दन से निर्मित, भुवः—पृथिवी के (मुख पर), भक्तिः इव—शृङ्गार-रचना की तरह, (विभाति—शोभायमान है)।

भाषानुवाद—कहीं श्यामल हंसों से मिले हुए मानसप्रेमी पक्षियों की अर्थात् राजहंसों की पङ्क्ति की तरह शोभित हो रही है और दूसरी ओर काले अगुरु से निर्मित मकरिकापत्रों तथा चन्दन से निर्मित पृथिवी के (मुख पर) शृङ्गार रचना की तरह शोभायमान है।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्य वर्णनं करोति कविः—

क्वचित्—कुत्रापि कस्मिंश्चित् स्थाने वा, कादम्बसंसर्गवती—नीलहंस-संसृष्टा, प्रियमानसानाम्—प्रियं मानसं नाम सरः येषां तेषाम्, खगानाम्—पक्षिणाम्, राजहंसानाम् इत्यर्थः। पङ्क्तिः इव—श्रेणी इव, (विभाति—राजति), अन्यत्र— अन्यस्मिन् स्थाने, कालागुरुदत्तपत्रा—कालेन श्यामवर्णेन अगुरुणा द्रव्यविशेषेण दत्तानि रचितानि पत्राणि मकरिकापत्राणि यत्र तथा-भूता, भुवः—वसुधायाः, चन्दनकल्पिता—मलयजविरचिता, भक्तिः इव—प्रसाधनविशेषलेखा इव, (विभाति—विराजते)।

श्लोकेऽस्मिन् उपमोत्प्रेक्षालङ्कारौ स्तः।

टिप्पणी—प्रियमानसानाम्—प्रियमानसरोवर वाले। प्रियं मानसं येषां ते प्रियमानसाः (बहुव्रीहि समास), तेषाम्। यहाँ 'वा प्रियस्य' इस वार्तिक से 'प्रिय' शब्द का पूर्वनिपात हुआ।

कालागुरुदत्तपत्रा—काले अगुरु से निर्मित मकरिकापत्र (मकराकार रचना विशेष)। कालम् अगुरु (कर्मधारय समास), कालागुरुणा दत्तानि पत्राणि यस्यै सा (बहुव्रीहि समास)।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा॥ ५६॥

अन्वय—क्वचित् छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमसी प्रभा इव (विभाति), अन्यत्र रन्ध्रेषु आलक्ष्यनभः प्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रलेखा इव (विभाति)।

शब्दार्थ—क्वचित्—कहीं, छायाविलीनैः (वृक्षों की) छाया में स्थित, तमोभिः—अन्धकारों से, शबलीकृता—चितकबरी की गयी, चान्द्रमसी प्रभा इव—चन्द्रमा की चाँदनी की तरह, (विभाति—शोभा पा रही है), अन्यत्र—दूसरी ओर या दूसरे स्थान में, रन्ध्रेषु—छिद्रों में अर्थात् रिक्त स्थानों में, आलक्ष्यनभः प्रदेशा—कहीं-कहीं दीख रहा है आकाश-प्रदेश जिसमें ऐसी,

शुभ्राशरदभ्रलेखा इव—शरद् ॠतु की श्वेत मेघ माला की तरह, (विभाति —शोभायमान है)।

भाषानुवाद—कहीं (वृक्षों की) छाया में अन्धकार से चितकबरी की गयी चन्द्रमा की चांदनी की तरह शोभा पा रही है और दूसरी ओर छिद्रों में अर्थात् रिक्त स्थानों में कहीं-कहीं दीख रहा है, आकाश-प्रदेश जिसमें ऐसी शरद्ॠतु की श्वेत मेघमाला की तरह शोभायमान है।

संस्कृत-व्याख्या—

गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्य शोभायाः वर्णनं करोति कविः—

क्वचित्—कस्मिंश्चित् स्थाने, छायाविलीनैः—छायास्थितैः, तमोभिः—अन्धकारैः, चान्द्रमसी प्रभा—चन्द्रसम्बन्धिनी, प्रभा—कान्तिः, ज्योत्स्ना इत्यर्थः। इव—यथा, (विभाति—शोभते), अन्यत्र—अन्यस्मिन् स्थाने, रन्ध्रेषु—छिद्रेषु, आलक्ष्यनभःप्रदेशा—आ ईषत् लक्ष्यः विलोक्यमानः नभसः गगनस्य प्रदेशः भागः यत्र तथा भूता, शुभ्रा—श्वेता, शरदभ्रलेखा इव—शरन्मेघपङ्क्तिः इव, (विभाति—राजते)।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारस्य उत्प्रेक्षालङ्कारस्य च संसृष्टिः वर्तते।

टिप्पणी—छायाविलीनैः—(वृक्षों की) छाया में स्थित। छायासु विलीनानि छायाविलीनानि (सप्तमी तत्पुरुष समास), तैः। वि+ली+क्त—विलीन। अन्धकारैः—अन्धकारों से। 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्त्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः। शबलीकृता—विविध रंगों से चित्रित। अशबला शबला सम्पद्यमाना कृता इति शबलीकृता। शबल+च्वि, ईत्व, चि+क्त+टाप्। चान्द्रमसी—चन्द्रमसः इयम् इति चान्द्रमसी। चन्द्रमस्+अण्+ङीप्।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि! विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः॥ ५७॥

अन्वय—अनवद्याङ्गि!, पश्य यमुनातरङ्गैः भिन्नप्रवाहा गङ्गा क्वचित् च कृष्णोरगभूषणा भस्माङ्गरागा ईश्वरस्य तनुः इव विभाति।

शब्दार्थ—अनवद्याङ्गि—हे सुन्दरी!, पश्य—देखो, यमुनातरङ्गैः—

यमुना की (श्यामल) तरङ्गों से, भिन्नप्रवाहा गङ्गा—मिली हुई धारा वाली गङ्गा, च—और, क्वचित्—कहीं पर, कृष्णोरगभूषणा—कृष्ण सर्पों से विभूषित, भस्माङ्गरागा—भस्म रूपी अङ्गराग का लेप किये हुए, ईश्वरस्य —शिवजी के, तनुः इव—शरीर की तरह, विभाति—शोभित हो रही है।

भावानुवाद—हे सुन्दरी ! देखो, यमुना की (श्यामल) तरङ्गों से मिली हुई धारावाली गङ्गा कहीं पर कृष्ण सर्पों से विभूषित और भस्मरूपी अङ्ग-राग का लेप किये हुए शिव जी के शरीर की तरह शोभित हो रही है।

संस्कृत-व्याख्या—

श्लोकेऽस्मिन् अपि कविः गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्य शोभां वर्णयति—

अनवद्याङ्गि—हे सुन्दरी ! पश्य—अवलोकय, यमुनातरङ्गैः—कालिन्दीभङ्गैः, भिन्नप्रवाहा—भिन्नः मिश्रितः प्रवाहः धारा यस्याः तादृशी, गङ्गा—जाह्नवी, क्वचित्—कुत्रापि, कृष्णोरगभूषणा—कृष्णसर्पविभूषणा, भस्माङ्गरागा—भस्म भूतिः एव अङ्गरागः विलेपनद्रव्यविशेषः यस्याः तादृशी, ईश्वरस्य—महादेवस्य, तनुः—वपुः, इव—यथा, विभाति—राजते।

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारस्य उपमालङ्कारस्य च संसृष्टिरस्ति।

टिप्पणी—कृष्णोरगभूषणा— कृष्ण सर्पों से विभूषित। उरसा गच्छन्ति इति उरगाः। उरस् + गम् + ड। भूष्यते एभिः इति भूषणानि। भूष् + णिच् + ल्युट् (अन)। कृष्णाः उरगाः कृष्णोरगाः (कर्मधारय समास), ते भूषणानि यस्याः सा (बहुव्रीहि समास)।

यहाँ ५४ से लेकर ५७ श्लोकों तक में ५७ वें श्लोक का उत्तरार्ध लेकर ही उक्त सभी श्लोकों का अर्थ निकलता है। अतः 'कलापक' है। इस संदर्भ में कहा भी गया है—

द्वाभ्यां तु युग्मकं प्रोक्तं त्रिभिः प्रोक्तं विशेषकम्।
कलापकं चतुर्भिः स्यात् तदूर्ध्वं कुलकं मतम्॥

(दो श्लोकों से रचित वाक्य को 'युग्मक' कहते हैं, तीन से रचित को 'विशेषक', चार वाले को 'कलापक' और चार से अधिक वाले को 'कुलक' कहा जाता है।)

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ।। ५८ ।।

अन्वय—अत्र समुद्रपत्न्योः जलसन्निपाते अभिषेकात् पूतात्मनां तनुत्यजां तत्त्वावबोधेन विना अपि भूयः शरीरबन्धः नास्ति किल ।

शब्दार्थ—अत्र—यहाँ (प्रयाग में), समुद्रपत्न्योः—समुद्रपत्नियों के यानी गङ्गा-यमुना के, जलसन्निपाते—जल के सङ्गम में, अभिषेकात्—स्नान करने से, पूतात्मनाम्—पवित्र आत्मा वाले, तनुत्यजाम्—शरीरत्यागियों का, तत्त्वावबोधेन विना—बिना तत्त्वज्ञान के, अपि—भी, भूयः—पुनः, शरीर-बन्धः न अस्ति—शरीर का बन्धन नहीं रहता अर्थात् वे आवागमन से मुक्त हो जाते हैं ।

भाषानुवाद—यहाँ (प्रयाग में) समुद्रपत्नियों के यानी गङ्गा-यमुना के सङ्गम में स्नान करने से पवित्र आत्मा वाले शरीरत्यागियों का बिना तत्त्व-ज्ञान के भी पुनः शरीर का बन्धन नहीं रहता अर्थात् वे आवागमन से मुक्त हो जाते हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—

कविकुलगुरुकालिदासः गङ्गायमुनयोः सङ्गम-स्नानस्य महत्त्वं वर्णयति—

अत्र—अस्मिन् स्थाने, प्रयागे इत्यर्थः । समुद्रपत्न्योः—गङ्गायमुनयोः, जलसन्निपाते—सङ्गमे, अभिषेकात्—स्नानात्, पूतात्मनाम्—पवित्रात्मनाम्, तनुत्यजाम्—देहत्यागिनाम्, तत्त्वावबोधेन—तत्त्वज्ञानेन, विना अपि—ऋते, अपि, भूयः—पुनः, शरीरबन्धः—गात्रयोगः, न नहि, अस्ति—वर्तते, किल—निश्चयेन ।

टिप्पणी—समुद्रपत्न्योः—समुद्र की दो पत्नियों (गङ्गा और यमुना) के । यों तो सभी नदियाँ समुद्र की पत्नियाँ ही मानी जाती हैं । पर, उनमें गङ्गा और यमुना प्रमुख हैं ।

जलसन्निपाते—जल के मिलन अथवा सङ्गम में । सम् + नि + पत् + घञ् = सन्निपातः । जलयोः सन्निपातः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मिन् ।

तनुत्यजाम्—शरीर का परित्याग करने वालों का। तनुं त्यजन्ति इति तनुत्यजः। तनु + त्यज् + क्विप्, तेषाम्।

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय।
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फलितास्तवेति ॥ ५९ ॥

अन्वय—इदं तत् निषादाधिपतेः पुरम् (अस्ति) यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु सुमन्त्रः, 'कैकेयि ! तव कामाः फलिताः' इति अरुदत्।

शब्दार्थ—इदम्—यह, तत्—वह, निषादाधिपतेः—निषादराज (गुह) का, पुरम्—नगर (शृङ्गवेरपुर), (अस्ति—है), यस्मिन्—जिसमें, जहाँ, मया—मेरे द्वारा, मौलिमणिम्—मुकुटमणि को, विहाय—छोड़कर, जटासु बद्धासु—जटा बाँध लेने पर, सुमन्त्रः—सुमन्त्र, इति अरुदत्—यह कह कर रोने लगे थे (कि), कैकेयि—कैकेयी !, तव—तुम्हारे, कामाः—मनोरथ, फलिताः—सफल हुए।

भाषानुवाद—यह वही निषादराज (गुह) का नगर (शृङ्गवेरपुर) है, जहाँ मेरे द्वारा मुकुटमणि को त्याग कर जटा बाँध लेने पर सुमन्त्र यह कह कर रोने लगे थे कि कैकेयी ! तुम्हारे मनोरथ सफल हुए।

संस्कृत-व्याख्या—

निषादराजस्य नगर्याः वर्णनं करोति इविः—

इदम्—एतत्, तत्—अदः, पुरम्—नगरम् (अस्ति), यस्मिन्—नगरे, मया—रामेण, मौलिमणिम्—मुकुटम्, विहाय—परित्यज्य, जटासु—सटासु, बद्धासु—निबद्धासु रचितासु वा, सुमन्त्रः—एतन्नामकः मन्त्री, कैकेयि—भरतमातः, तव—ते, कामाः—मनोरथाः, फलिताः—सफलाः (जाताः), इति—एवं (कथयन्), अरुदत्—रुदितवान्।

टिप्पणी—निषादाधिपतेः—निषादानाम् अधिपतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य। पुरम्—नगर, शृङ्गवेरपुर। निषादराज की राजधानी शृङ्गवेरपुर थी। मौलिमणिम्—मौलिस्थो मणिः मौलिमणिः मध्यमपदलोपी समास), तम्। सुमन्त्रः—सुमन्त्र। सुमन्त्र राजा दशरथ के मन्त्री थे। वे

राम आदि के साथ शृङ्गवेरपुर तक आये थे। राम ने यहीं से सुमन्त्र को लौटा दिया था।

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥ ६० ॥

अन्वय—पुण्यजनाङ्गनानां पयोधरैः निर्दिष्टहेमाम्बुजरेणु ब्राह्मं सरः, यस्याः बुद्धेः अव्यक्तम् इव कारणम् आप्तवाचः उदाहरन्ति।

शब्दार्थ—पुण्यजनाङ्गनानाम्—यक्षों की स्त्रियों के, पयोधरैः—स्तनों द्वारा, निर्दिष्टहेमाम्बुजरेणु—उपभोग किये गये स्वर्ण कमलों के पराग वाले, ब्राह्मं सरः—ब्राह्मसर को यानी मानसरोवर को, आप्तवाचः—यथार्थ को कहने वाले मुनि लोग, यस्याः—जिस (सरयू नदी) का, कारणम्—कारण यानी उद्‌गमस्थल, अव्यक्तम् इव उदाहरन्ति—उसी तरह बताते हैं, जिस तरह प्रकृति को, बुद्धेः—बुद्धि का (कारण कहते हैं)।

भाषानुवाद—यक्षों की स्त्रियों के स्तनों द्वारा उपभोग किये गये स्वर्ण-कमलों के पराग वाले ब्राह्मसर को यानी मानसरोवर को यथार्थ को कहने वाले मुनि लोग जिस (सरयू नदी) का कारण यानी उद्‌गमस्थल उसी तरह बताते हैं, जिस तरह प्रकृति को बुद्धि का (कारण) बताते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

महाकविः कालिदासः श्लोकेऽस्मिन् सरयूनदीं वर्णयति—

पुण्यजनाङ्गनानाम्—यक्षस्त्रीणाम्, पयोधरैः—स्तनैः, निर्दिष्टहेमाम्बुजरेणु—उपयुक्तस्वर्णकमलरेणु, ब्राह्मं सरः—ब्रह्मसम्बन्धि सरः, मानसरोवरम् इत्यर्थः। यस्याः—सरयूनद्याः, बुद्धेः—महतत्त्वस्य, अव्यक्तम्—प्रकृतिं प्रधानं वा, इव—यथा, कारणम्—उत्पत्तिहेतुम्, आप्तवाचः—आप्ता वाग् येषां ते आप्तवाचः। उदाहरन्ति—कथयन्ति।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—पुण्यजनाङ्गनानाम्—यक्षों की स्त्रियों के। पुण्यजनानाम् अङ्गनाः पुण्यजनाङ्गनाः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तासाम्।, यक्षैकपिङ्गल-विलश्रीदपुण्यजनेश्वराः इत्यमरः।

आप्तवाचः—विश्वास योग्य वाणी वाले सत्यवादी। आप्ता वाक् येषां ते आप्तवाचः (बहुव्रीहि समास)। प्राचीन ऋषियों एवं वेद, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थों के वचनों को आप्तवाक् या आप्त कहा गया है।

उदाहरन्ति—कहते हैं। उद्+आ+हृ+लट्+अन्ति (प्रथम पुरुष बहुवचन)।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस तरह महत्तत्त्व का उत्पत्ति स्थान अव्यक्त (प्रकृति) है उसी तरह सरयू नदी का उत्पत्ति स्थान मानसरोवर है। जैसे किसी ने अव्यक्त को नहीं देखा है वैसे ही सरयू नदी को भी मानसरोवर से निकलते हुए किसी ने नहीं देखा है। यहाँ 'आप्तवाक्य' ही प्रणाम है।

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्।
तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥६१॥

अन्वय—तीरनिखातयूपा या तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः इक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि जलानि अयोध्यां राजधानीम् अनुवहति।

शब्दार्थ—तीरनिखातयूपा—तट पर गड़े हुए यज्ञस्तम्भों वाली, या—जो (सरयूनदी), तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः—अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर किये जाने वाले स्नान के लिए उतरे हुए, इक्ष्वाकुभिः—इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के द्वारा, पुण्यतरीकृतानि—अतिशय पवित्र किये गये, जलानि—जल को, अयोध्यां राजधानीम् अनु—राजधानी अयोध्या के पास, वहति—प्रवाहित करती है।

भाषानुवाद—तट पर गड़े हुए यज्ञस्तम्भों वाली जो (सरयू नदी) अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर किये जाने वाले स्नान के लिए उतरे हुए इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के द्वारा अतिशय पवित्र किये गये जल को राजधानी अयोध्या के पास प्रवाहित करती है।

संस्कृत-व्याख्या—



सरयूनद्याः वर्णनं करोति कविः—

**तीरनिखातयूपा**—तीरे निखाताः तीरनिखाताः, तीरनिखाताः यूपाः यस्याः सा, या—सरयूनदी, तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः—अश्वमेधयज्ञान्तस्नानावरूढैः, इक्ष्वाकुभिः—इक्ष्वाकुवंशीयराजभिः, पुण्यतरीकृतानि—पवित्रतरीविहितानि, जलानि वारीणि, अयोध्यां राजधानीम्—नगरीम्, अनु—समीपे, वहति—प्रापयति ।

**टिप्पणी**—पुण्यतरीकृतानि—अतिशय पवित्र किये गये । अतिशयेन पुण्यानि पुण्यतराणि पुण्य+तरप् । अपुण्यानि पुण्यतराणि कृतानि इति पुण्यतरीकृतानि । पुण्यतर+च्वि, ईत्व, कृ+क्त । वहति—बहाती है । यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ बोधित है । वह्+लट्+ति (प्रथमपुरुष एकवचन) ।

या सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे सम्भावयत्युत्तरकोसलानाम् ।। ६२ ।।

**अन्वय**—यां मे मानसं सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् उत्तरकोशलानां सामान्यधात्रीमिव सम्भावयति ।

**शब्दार्थ**—याम्—जिस (सरयू नदी) को, मे—मेरा, मानसम्—हृदय, सैकतोत्सङ्गसुखोपचितानाम्—बालुकामय तट रूप गोद में सुख पाने योग्य, प्राज्यैः पयोभिः—प्रचुर जल (रूप दूध) से, परिवर्धितानाम्—पाले गये, उत्तरकोसलानाम्—उत्तर कोसल के राजाओं की, सामान्यधात्रीम् इव—सामान्यधात्री की तरह यानी सर्वसाधारण उपमाता की तरह, सम्भावयति—मानता है ।

**भाषानुवाद**—जिस सरयू नदी को मेरा हृदय बालुकामय तट रूप गोद में सुख पाने योग्य एवं प्रचुर (जल रूप दूध) से पाले गये उत्तरकोसल के राजाओं की सामान्य धात्री की तरह यानी सर्वसाधारण माता की तरह मानता है ।

**संस्कृत-व्याख्या**—

'रामः सीतामकथयत् यत् अहं सरयूम् अतीव आद्रिये' इति वर्णनं दृश्यताम् अस्मिन् श्लोके—

याम्—सरयूम्, मे—मम, मानसम्—चित्तम्, सैकतोत्सङ्गसुखोचिता-

नाम्—पुलिनक्रीडानन्दयोग्यानाम्, उत्तरकोशलानाम्—उत्तरकोशलस्थं राज्ञाम्, सामान्यधात्रीम्, इव—साधारण मातरम् इव, सम्भावयति—मन्यते ।

अत्र उपमालङ्कारो वर्तते ।

टिप्पणी— सैकतोत्सङ्गसुखोचितानाम्—वालुकामय तट रूप गोद में सुख प्राप्त करने योग्य । उद् + सञ्ज् + घञ्—उत्सङ्गः । 'सैकतं सिकतामयम्' इत्यमरः । सिकता + अण्—सैकतम् । सैकतरूपः उत्सङ्गः सैकतोत्सङ्गः (मध्यमपदलोपी समास), तस्मिन् सुखम्, तस्मिन् उचिताः (सहसुपा समास) तेषां सैकतोत्सङ्गसुखोचितानाम् । सामान्यधात्रीम्—सर्वसाधारण माता, धाय । दधाति इति धात्री । धा + तृच् + ङीप्, सामान्या धात्री सामान्य धात्री (कर्मधारय समास), ताम् ।

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञाः सरतूर्वियुक्ता ।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव ।। ६३ ।।

अन्वय—मदीया जननी इव मान्येन तेन राज्ञा वियुक्ता सा इयं सरयूः दूरे वसन्तं मां शिशिरानिलैः तरङ्गहस्तैः उपगूहति इव ।

शब्दार्थ—मदीया जननी इव—मेरी माता (कौशल्या) की तरह, मान्येन तेनराज्ञा—पूज्य उस राजा (दशरथ) से, वियुक्ता—बिछुड़ी हुई, सा—वह, इयम्—यह, सरयूः—सरयूनदी, दूरे वसन्तम्—दूर में स्थित, माम्—मुझे, शिशिरानिलैः—शीतल पवन वाले, तरङ्गहस्तै—लहर रूप हाथों से, उपगूहति इव—मानो आलिङ्गन कर रही है ।

भाषानुवाद—मेरी माता (कौशल्या) की तरह पूज्य उस राजा (दशरथ) से बिछड़ी हुई वही यह सरयू नदी दूर में स्थित मुझे शीतल पवन वाले लहर रूप हाथों से मानो आलिङ्गन कर रही है ।

संस्कृत-व्याख्या—

सरयूनद्याः वर्णनं करोति कविः—

मदीया—मम, जननी—माता, इव—यथा, मान्येन—पूज्येन, तेन—

अमुना, राज्ञा—नृपेण, दशरथेन इत्यर्थः। वियुक्ता—रहिता, सा—असौ, इयम्—एषा, सरयूः—सरयूनदी, दूरे—सुदूरे, वसन्तम्—निवसन्तम्, माम्-रामम् शिशिरानिलैः—शीतल-पवनैः, तरङ्गहस्तैः—भङ्गकरैः, उपगूहति—आलिङ्गति, इव—यथा।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारः रूपकालङ्कार उत्प्रेक्षालङ्कारश्च सन्ति।

टिप्पणी—मदीया—मेरी। मम् इयम् इति अस्मद्+छ+ईय+टाप्, 'प्रत्योत्तरपदयोश्च' सूत्र से मदादेश हुआ।

वियुक्ता—बिछड़ी हुई। वि+युज्+टाप्।

तरङ्गहस्तैः—लहर रूपी हाथों से। तरङ्गरूपाः हस्ताः (मध्यमपद-लोपी समास), तैः।

विरक्तसन्ध्याकपिशं परस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः ॥६४॥

अन्वय—विरक्तसन्ध्याकपिशं पार्थिवं रजः पुरस्तात् यतः उज्जिहीते (ततः) हनूमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः ससैन्यः मां प्रत्युद्गतः इति शङ्के।

शब्दार्थ—यतः—जिस कारण से, पुरस्तात्—सामने, विरक्तसन्ध्या-कपिशम्—अत्यन्त लाल सन्ध्या के समान कपिशवर्ण वाली, पार्थिवं रजः—पृथिवी की धूलि, उज्जिहीते—उठ रही है, (ततः—उससे) इति शङ्के—यह शङ्का (अनुमान) करता हूं, हनूमत्कथितप्रवृत्तिः—हनुमान द्वारा (मेरे आगमन का) समाचार जानकर, भरतः—भरत, ससैन्यम्—सेना के साथ मां प्रत्युद्गतः—मेरी अगवानी के लिए आ रहे हैं।

भाषानुवाद—जिस कारण से सामने अत्यन्त लाल सन्ध्या के समान कपिशवर्णवाली पृथिवी की धूलि उठ रही है (उससे) यह अनुमान करता हूं कि हनुमान द्वारा (मेरे आगमन का) समाचार जानकर भरत सेना के साथ मेरी अगवानी के लिए आ रहे हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

रामस्य स्वागताय भरतस्यागमनस्य अनुमानं वर्णयति कविः—

विरक्तसन्ध्याकपिशम्—विरक्ता अतिरिक्ता या सन्ध्या सन्ध्याकालः तद्वत् कपिशं ताम्रवर्णम्, पार्थिवम्—पृथिव्याः इदम्, रजः—रेणुः धूलिः वा, पुरस्तात्—अग्रतः, यतः—यस्मात् कारणात्, उज्जिहीते—उद्गच्छति, (ततः—तस्मात्) हनूमत्कथितप्रवृत्तिः—पवनपुत्रनिवेदितप्रवृत्तिः, भरतः कैकेय्याः पुत्रः, ससैन्यः—सेनासहितः, माम्—रामम्, प्रत्युद्गतः—स्वागताय चलितः, इति, शङ्के—तर्कयामि।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—हनूमत्कथितप्रवृत्तिः—जिसे हनुमान ने (मेरे आगमन का) समाचार बता दिया। हनुः अस्ति अस्य इति हनूमान्। हनु+मतुप्, 'शरादीनां च' इति सूत्रेण दीर्घः। हनूमता कथिता हनूमत्कथिता (तृतीया तत्पुरुषसमासः), हनूमत्कथिता प्रवृत्तिः यस्य सः (बहुव्रीहिसमासः)। ससैन्यः —सेना के साथ। सैन्येन सह वर्तमानः इति ससैन्यः (तेन सहेति बहुव्रीहि समासः)।

अद्धा श्रियं पालितसङ्गराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥६५॥

अन्वय—अद्धा साधुः सः पालितसंगराय मे अनघां संरक्षितां श्रियं मृधे खरादीन् हत्वा निवृत्ताय लक्ष्मणः त्वाम् इव प्रत्यर्पयिष्यति।

शब्दार्थ—अद्धा—सत्य है, साधुः सः—सज्जन वह (भरत), पालित-संगराय—(पिता की आज्ञा रूपी( प्रतिज्ञा का पालन किये हुए, मे—मुझे, अनघाम्—अदूषित, संरक्षिताम्—सुरक्षित, श्रियम्— (राज्य—)लक्ष्मी को, मृधे—युद्ध में, खरादीन् हत्वा—खर आदि राक्षसों को मारकर, निवृत्ताय —लौटे हुए (मुझे), लक्ष्मणः—लक्ष्मण ने, त्वाम् इव—जैसे तुम्हें (लौटाया था वैसे ही), प्रत्यर्पयिष्यति—लौटायेंगे।

भावानुवाद—सत्य है, सज्जन वे भरत (पिता की आज्ञा रूपी) प्रतिज्ञा का पालन किये हुए मुझे अदूषित और सुरक्षित राज्यलक्ष्मी को, युद्ध में खर आदि राक्षसों को मारकर लौटे हुए (मुझे) लक्ष्मण ने जैसे तुम्हें (लौटाया था वैसे ही) लौटायेंगे।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामः सीतां प्रति अकथयत् यत् भरतः मह्यं सुरक्षितां राज्यलक्ष्मीम् अर्पयिष्यति इति सत्यम्' दृश्यतामिदं वर्णनम् अस्मिन् श्लोके—

अद्धा—सत्यम्, साधुः—सज्जनः, सः—असौ, भरतः इत्यर्थः। पालितसंगराय—पालितपितृप्रतिज्ञाय, मे—मह्यम्, अनघाम्—अदोषाम्, संरक्षिताम्—सुरक्षिताम्, श्रियम्—लक्ष्मीम्, राज्यलक्ष्मीम् इत्यर्थः। मृधे—युद्धे, खरादीन्—खरप्रभृतीन्, (राक्षसान्), हत्वा—हननं कृत्वा, निवृत्ताय—प्रत्यावृत्ताय, लक्ष्मणः—सौमित्रिः, त्वाम् इव—भवतीम् इव, प्रत्यर्पयिष्यति—समर्पयिष्यति।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—अद्धा—सत्य, अवश्य। यह पद अव्यय है। 'सत्ये त्वद्धाऽञ्जसा द्वयम् इत्यमरः।

अनघाम्—पापरहित। अविद्यमानम् अघं यस्याः सा अनघा (नञ्-बहुव्रीहिसमास) ताम्।

प्रत्यर्पयिष्यति—लौटा देंगे। प्रति + ऋ + णिच्, पुक् का आगम + लृट् (प्रथमपुरुष एकवचन)।

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ॥ ६६॥

अन्वय—चीरवासा पदातिः असौ भरतः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः (सन्) गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैः अमात्यैः सह अर्घ्यपाणिः (सन्) माम् अभ्युपैति।

शब्दार्थ—चीरवासा—वल्कल वस्त्रधारण किये हुए, पदातिः—पैदल चलते हुए, असौ—वे (भरत), पश्चात् अवस्थापितवाहिनीकः—सेना को पीछे रखकर, गुरुम्—गुरु (वशिष्ठ) को, पुरस्कृत्य—आगे कर, वृद्धैः अमात्यैः सह—वृद्ध मन्त्रियों के साथ, अर्घ्यपाणिः—हाथ में अर्घ्य लिए, माम् अभ्युपैति—मेरी ओर आ रहे हैं।

भावानुवाद—वल्कलवस्त्र धारण किये हुए और पैदल चलते हुए वे

भरत सेना को पीछे रखकर गुरु (वशिष्ठ) को आगे कर वृद्ध मन्त्रियों के साथ हाथ में अर्घ्य (पूजन-सामग्री) लिए मेरी ओर आ रहे हैं।

संस्कृत-व्याख्या—

पूजोपकरणमादाय वृद्धैः अमात्यैः सह भारतस्य आगमनस्य वर्णनं करोति कविः—

चीरवासा—वल्कलवसनः, पदातिः—पादचारी, असौ—सः भरतः कैकेय्याः पुत्रः, पश्चादवस्थापित वाहिनीकः—पश्चात् पृष्ठभागे अवस्थापिता वाहिनी सेना येन स तथोक्तः सन्, गुरुम्-वशिष्ठम्, पुरस्कृत्य—अग्रे कृत्वा वृद्धैः—स्थविरैः, अमात्यैः—मन्त्रिभिः, सह—साकम्, अर्घ्यपाणिः—अर्घ्यं पाणौ यस्य सः (सन्), माम्—रामम्, अभ्युपैति—समीपे आगच्छति।

टिप्पणी—पदातिः—पैदल चलने वाला। पादाभ्याम् अतति इति पदातिः। पद + अत् + इनि।

पुरस्कृत्य—आगे करके। पुरस् + कृ + ल्यप्। यहाँ 'पुरोऽव्ययम्' सूत्र से प्रातितत्पुरुष समास हुआ।

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्॥ ६७॥

अन्वय—यः पित्रा विसृष्टाम् अङ्कगतां श्रियं युवा अपि मदपेक्षया अभोक्ता (सन्) इयन्ति वर्षाणि तया सह उग्रम् आसिधारं व्रतम् अभ्यस्यति इव।

शब्दार्थ—यः—जो (भरत), पित्रा—पिता के द्वारा, विसृष्टा—छोड़ी गयी यानी दी गयी, अङ्कगताम्—गोद में आयी हुई, श्रियम्—लक्ष्मी को, मदपेक्षया—मेरी अपेक्षा के कारण अर्थात् मेरे प्रति भक्ति होने के कारण, युवा अपि—युवक होकर भी, अभोक्ता—न भोग करते हुए, इयन्ति वर्षाणि—इतने वर्षों तक, तया सह—उस (राज्यलक्ष्मी) के साथ, उग्रम् आसिधारं व्रतम् अभ्यस्यति इव—मानों कठिन आसिधार व्रत का अभ्यास करते रहे हैं।

भाषानुवाद—जो (भरत) पिता के द्वारा छोड़ी गयी यानी दी गयी और गोद में आयी हुई लक्ष्मी को मेरी अपेक्षा के कारण अर्थात् मेरे प्रति

भक्ति होने के कारण युवक होकर भी न भोग करते हुए इतने वर्षों तक यानी चौदह वर्षों तक उस राज्यलक्ष्मी के साथ मानों कठिन 'आसिधारव्रत' का अभ्यास करते रहे हैं।

**संस्कृत-व्याख्या—**

भरतस्य प्रशंसां वर्णयति कविः—

यः—भरतः, पित्रा—तातेन जनकेन वा, विसृष्टाम्—दत्ताम्, अङ्कगताम्—क्रोडप्राप्ताम्, श्रियम्—राज्यलक्ष्मीम्, युवा अपि तरुणः अपि, मदपेक्षया—मयि भक्त्या, अभोक्ता—न भोक्ता, इयन्ति वर्षाणि—एतावतः संवत्सरान् तया—अमुया, राज्यलक्ष्म्या इत्यर्थः। सह—सार्धम्, उग्रम्—तीक्ष्णम्, आसिधारम्—खड्गधाराचङ्क्रमणम्, व्रतम्—नियमम्, अभ्यस्यति—वर्तयति, इव—यथा।

श्लोकोऽस्मिन् समासोक्तिरलङ्कारः उत्प्रेक्षालङ्कारः च स्तः।

टिप्पणी—इयन्ति वर्षाणि—इतने वर्षों तक। यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई।

आसिधारव्रतम्—आसिधारव्रत। जैसे तलवार की धार पर चलना बहुत कठिन है उसी प्रकार युवक का युवति के साथ काम-भावना से रहित होकर शयन करना कठिन है। पर, यदि कोई संयम की भावना को लेकर इस तरह आचरण करता है तो उस आचरण को 'आसिधारव्रत' कहते हैं।

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीया-
मिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मया-
भिरुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतोनुगाभिः ॥ ६८ ॥

अन्वय—दाशरथौ एतावदुक्तवति (सति) तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा विमानं सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितं (सत्) ज्योतिष्पथात् अवततार।

शब्दार्थ—दाशरथौ एतावदुक्तवति (सति)—राम के इतना कह चुकने

पर, तदीयाम् इच्छाम्---उनकी इच्छा को, अधिदेवतया---अधिदेवता के द्वारा, विदित्वा---जानकर, विमानम्---पुष्पकविमान, सविस्मयाभिः---विस्मय के साथ, भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः---भरत के पीछे-पीछे चलने वाली प्रजा द्वारा, उद्वीक्षितम्---देखा जाता हुआ, ज्योतिष्पथात्---आकाश से नीचे, अवततार---उतर पड़ा।

भाषानुवाद---राम के इतना कह चुकने पर उनकी इच्छा को अधिदेवता के द्वारा जानकर पुष्पक विमान विस्मय के साथ भरत के पीछे-पीछे चलने वाली प्रजा द्वारा देखा जाता हुआ आकाश से नीचे उतर पड़ा।

संस्कृत-व्याख्या---

महाकविकालिदासः श्लोकेऽस्मिन् आकाशात् विमानावतरणस्य वर्णनं करोति---

दाशरथी---रामचन्द्रे, एतावदुक्तवति---एतावत् इयत् वचनम् उक्तवति कथितवति, तदीयाम्---रामचन्द्रसम्बन्धिनीम्, इच्छाम्---काङ्क्षाम्, अधिदेवतया---अधिदेवेन, विदित्वा अवगम्य ज्ञात्वा वा, विमानम्---यानम्, सविस्मयाभिः---विस्मययुक्ताभिः, भरतानुगाभिः---भरतम् अनुगच्छन्तीभिः-प्रकृतिभिः---प्रजाभिः, उद्वीक्षितम्---समुद्वीक्षितम् (सत्), ज्योतिष्पथात्---गगनात्, अवततार---वसुधातलम् आगतम्।

टिप्पणी---दशरथौ दशरथ के पुत्र, राम के। दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः, दशरथ + इन्, तस्मिन्। ज्योतिष्पथात्---नक्षत्र पथ से यानी आकाश से। यहाँ 'अपादाने पञ्चमी' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई।

महाकविकालिदास ने महाकाव्य के लक्षण के अनुसार सर्ग के अन्तिम भाग में ६८ वें से लेकर ७८ वें श्लोक तक वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है। इसका लक्षण है---'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।' अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण, दो गुरु हों, उसे 'वसन्ततिलका' छन्द कहते हैं। इसके पाद के अन्त में यति होती है।

तस्मात्पुरःसरविभीषणदर्शितेन
सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः ।
यानादवात्तरददूरमहीतलेन
मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः ॥६९॥

**अन्वय**—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः रामः पुरः सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन भङ्गिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानात् अवातरत् ।

**शब्दार्थ**—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः—सेवा-कर्म में निपुण सुग्रीव के द्वारा हाथ का सहारा दिये गये, रामः—राम, पुरःसरविभीषणदर्शितेन—आगे चलने वाले विभीषण द्वारा दिखाये गये, अदूरमहीतलेन—समीपवर्ती भूतल से लगे हुए, भङ्गिरचितस्फटिकेन—सुन्दरता के साथ जटित स्फटिक मणियों वाले, मार्गेण—मार्ग से, तस्मात् यानात्—उस (पुष्पक विमान से, अवातरत्—उतर गये ।

**भाषानुवाद**—सेवा-कर्म में निपुण सुग्रीव के द्वारा हाथ का सहारा दिये गये राम आगे चलने वाले भीषण द्वारा दिखाये गये समीपवर्ती भूतल से लगे हुए सुन्दरता के साथ जटित स्फटिकमणियों वाले मार्ग से, उस (पुष्पक) विमान से उतर गये ।

**संस्कृत-व्याख्या**—

पुष्पकविमानात् रामस्यावतरणस्य वर्णनं करोति कविः—

सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः—परिचर्याप्रवीणसुग्रीवप्रदत्तकरः, रामः—दाशरथिः, पुरः सरविभीषणदर्शितेन—पुरः सरेण अग्रे व्रजता विभीषणेन रावणानुजेन दर्शितेन-प्रदर्शितेन, अदूरमहीतलेन—न दूरमहीतलेन, भङ्गिरचितस्फटिकेन—भङ्गिभिः विच्छित्तिभिः रचितस्फटिकेन बद्धस्फटिकेन, मार्गेण—पथा, तस्मात्—अमुष्मात्, यानात्—विमानात्, अवातरत्—अवतीर्णवान् ।

श्लोकेऽस्मिन् स्वभावोक्तिरलङ्कारो विद्यते ।

**टिप्पणी**—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः—सेवा करने में दक्ष वानरराज (सुग्रीव) के हाथ का सहारा लिये हुए । हरीणां वानराणाम् ईश्वरः

हरीश्वरः (कर्मधारय समास), सेवाविचक्षणहरीश्वरेण दत्तः हस्तः यस्मै सः (बहुव्रीहि समास)।

अवातरत्—लतर गये। अव + तॄ + लङ् (प्रथम पुरुष एकवचन)।

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य
स भ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते।
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ
तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके ॥ ७० ॥

अन्वय—प्रयतः सः इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्य अर्घ्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुः (सन्) भ्रातरं भरतम् अस्वजत्। तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्धनि उपजघ्रौ च।

शब्दार्थ—प्रयतः—पवित्र, सः—उन (राम) ने, इक्ष्वाकुवंशगुरवे—इक्ष्वाकुवंश के गुरु (वशिष्ठ) को, प्रणम्य—प्रणाम कर, अर्घ्यपरिग्रहान्ते—अर्घ्य ग्रहण करने के अन्त में, पर्यश्रुः—अश्रु बहाते हुए, भ्रातरं भरतम्—भाई भरत को, अस्वजत्—आलिङ्गन किया। तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके—उनकी, (राम के प्रति) भक्ति के कारण पिता के द्वारा दिये गये राज्य के महान् अभिषेक का यानी राजतिलक का परित्याग करने वाले (भरत के), मूर्धनि—सिर में, उपजघ्रौ—सूँघा।

भाषानुवाद—पवित्र उन राम ने इक्ष्वाकुवंश के गुरु (वशिष्ठ) को प्रणाम कर अर्घ्यग्रहण करने के बाद अश्रु बहाते हुए भाई भरत को आलिङ्गन किया और उनकी (राम के प्रति) भक्ति के कारण पिता के द्वारा दिये गये राज्य के महान् अभिषेक यानी राजतिलक का परित्याग करने वाले (भरत के) सिर को सूँघा।

संस्कृत-व्याख्या—

रामस्य वशिष्ठभरताभ्यां सम्मिलनस्य वर्णनं करोति कविकालिदासः—

प्रयतः—पवित्रः, सः—असौ, रामः इत्यर्थः। इक्ष्वाकुवंशगुरवे—वशिष्ठाय, प्रणम्य—नत्वा, अर्घ्यपरिग्रहान्ते—पूजाद्रव्यस्वीकारोपरान्ते, पर्यश्रुः—परिगतानन्दबाष्पः (सन्), भ्रातरम्—अनुजम्, भरतम्—कैकेयीसुतम्,

अस्वजत्—आलिङ्गन्, तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके—तस्मिन् रामचन्द्रे भक्त्या अपोढः परिहृतः पितृराज्यमहाभिषेको येन तादृशे, मूर्धनि—शिरसि, उपजघ्रौ—घ्रातवान्, च ।

टिप्पणी—प्रयतः—पवित्र । 'पवित्रः प्रयतः पूतः' इत्यमरः । इक्ष्वाकुवंशगुरवे—इक्ष्वाकुवंश के गुरु (वशिष्ठ) को । इक्ष्वाकोः वंशः, तस्य गुरुः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मै । यहाँ 'गुरुम् अनुकूलयितुम' ऐसी विवक्षा करके 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई । पर, 'प्रणम्य' का कर्म होने से यहां यानी 'गुरु' शब्द में द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए ।

पर्यश्रुः—अश्रु वहाते हुए । परिगतानि अश्रुणि यस्यः स (बहुव्रीहि समास) ।

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च<br>
प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान् ।<br>
अन्वग्रहीत्प्रणमतः शुभदृष्टिपातै-<br>
र्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा ॥७१॥

अन्वय—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् च प्ररोहजटिलान् प्लक्षान् इव प्रणमतः मन्त्रिवृद्धान् शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा च अन्वग्रहीत् ।

शब्दार्थ—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान्—दाढ़ी-मूँछों के बढ़ जाने से उत्पन्न विकृत मुख वाले, च—और, प्ररोहजटिलान् प्लक्षान् इव—बढ़ी हुई जटाओं से युक्त, वट-वृक्षों के समान, प्रणमतः—प्रणाम करते हुए, मन्त्रिवृद्धान्—वृद्धमन्त्रियों को, शुभदृष्टिपातैः—स्नेहयुक्त दृष्टि से देखकर, च—और, वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा—मधुर अक्षरों वाली वाणी से कुशल-समाचार पूछकर, अन्वग्रहीत किया ।

भाषानुवाद—दाढ़ी-मूँछों के बढ़ जाने से उत्पन्न विकृत मुखवाले और बढ़ी हुई जटाओं से युक्त वट-वृक्षों के समान, प्रणाम करते हुए वृद्ध मन्त्रियों

को स्नेह युक्त दृष्टि से देखकर एवं मधुर अक्षरों वाली वाणी से कुशल-समाचार पूछकर अनुगृहीत किया।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामः मन्त्रिवृद्धान् मधुराक्षरया वाचा अनुगृहीतवान्' इत्यस्य वर्णनं कृतं कविना श्लोकेऽस्मिन्—

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान्—श्मश्रूणां मुखरोम्णां प्रवृद्धिः अतिवर्धनं तया जनिता उत्पन्ना आननविक्रिया वदनविकारो येषां तादृशान्, प्ररोह-जटिलान्—प्ररोहैः शाखावलम्बिभिः अधोमुखैः, प्रङ्कुरैः जटिलाम् जटावतः, प्लक्षान्—वटवृक्षान्, इव—यथा, प्रणमतः—प्रकर्षेण नमतः, मन्त्रिवृद्धान्—वृद्धमात्यान्, शुभदृष्टिपातैः—मङ्गलकारकप्रेक्षणैः, वार्तानुयोगमधुराक्षरया—वार्तानां कुशलप्रश्नानाम् अनुयोगेन प्रश्नेन मधुराणि अक्षराणि वर्णाः यस्यां तथाभूतया, वाचा च—वाण्या च, अन्वग्रहीत् अनुगृहीतवान्।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो वर्तते।

टिप्पणी—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान्—दाढ़ी-मूछों के बढ़ जाने से जिनका मुख विकृत हो गया था। प्र+वृध्+क्तिन्—प्रवृद्धिः। श्मश्रूणां प्रवृद्धिः श्मश्रुप्रवृद्धिः। आननस्य विक्रिया आनन विक्रिया। श्मश्रुप्रवृद्धया जनिता आनन विक्रिया येषां ते (बहुव्रीहिसमास), तान्।

प्लक्षान् इव—वट-वृक्षों की तरह। 'प्लक्षो जटी पर्कटी स्यान्न्यग्रोधो बहुपाद्वटः' इत्यमरः।

मन्त्रिवृद्धान्—वृद्धमन्त्रियों को। मन्त्रिषु वृद्धाः मन्त्रिवृद्धाः (सुप्सुपा समास), तान्।

दुर्जातवन्धुरयमृक्षहरीश्वरा मे
पौलस्त्य एव समरेषु पुरःप्रहर्ता।
इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन
व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे ॥७२॥

अन्वय—अयं मे दुर्जातवन्धुः ऋक्षहरीश्वरः, एष समरेषु पुरःप्रहर्ता पौलस्त्य इति आदृतेन रघुनन्दनेन कथितौ उभौ भरतः लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य ववन्दे।

**शब्दार्थ**—अयम्—यह, मे—मेरे, दुर्जातबन्धु—विपत्तिकाल के बन्धु, ऋक्षहरीश्वरः—रीछ-वानरों के अधिपति (सुग्रीव), एषः—यह, समरेषु—युद्धों में, पुरःप्रहर्ता—आगे बढ़कर प्रहार करने वाले, पौलस्त्यः—पुलस्त्य—सन्तान (विभीषण), इति—इस प्रकार, आदृतेन रघुनन्दनेन—आदरपूर्वक राम द्वारा, कथितौ—कहे गये, उभौ—(उन) दोनों (सुग्रीव और विभीषण) को भरतः—भरत ने, लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य—लक्ष्मण को छोड़कर, ववन्दे—प्रणाम किया।

**भाषानुवाद**—ये मेरे विपत्तिकाल के बन्धु और रीछ-वानरों के अधिपति (सुग्रीव) हैं। ये युद्ध में आगे बढ़कर प्रहार करने वाले पुलस्त्य-सन्तान (विभीषण) हैं—इस प्रकार आदरपूर्वक राम द्वारा कहे जाने पर उन दोनों (सुग्रीव और विभीषण) को भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर प्रणाम किया।

**संस्कृत-व्याख्या**—

रामः सुग्रीवस्य विभीषणस्य च परिचयं ददानः भरतम् अकथयत्—

अयम्—एषः, मे—मम, दुर्जातबन्धुः—आपद्बन्धुः, ऋक्षहरीश्वरः—सुग्रीवः इत्यर्थः। एषः—अयम्, समरेषु—युद्धेषु, पुरःप्रहर्ता—अग्रे अक्रमणकारी, पौलस्त्यः—विभीषणः इत्यर्थः। इति—अनेन प्रकारेण, आदृतेन—आदरवता, रघुनन्देन—रामेण, कथितौ—भाषितौ, उभौ—सुग्रीवविभीषणौ, भरतः—कैकेयीपुत्रः, लक्ष्मणम्—सौमित्रिम्, सुमित्रा पुत्रम् इत्यर्थः। व्युत्क्रम्य—उल्लंघ्य, ववन्दे—प्रणामं कृतवान्।

**टिप्पणी**—दुर्जातबन्धुः—दुःख के बन्धु यानी दुःख में साथ देने वाले। दुष्टं जातं दुर्जातम् (प्रादिसमास), दुर्जाते बन्धुः दुर्जातबन्धुः (सुप्सुपासमास)।

पौलस्त्यः—पुलस्त्य मुनि के कुल में उत्पन्न। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् इति पौलस्त्यः, पुलस्त्य + अण्।

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैन-<br>
मुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग।<br>
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन<br>
क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन ॥७३॥

**अन्वय**—तदनु सः सौमित्रिणा संससृजे, नम्रशिरसम् एनम् उत्थाप्य रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन अस्य उरः स्थलेन भुजमध्यं क्लिशयन् इव भृशम् आलिलिङ्ग च ।

**शब्दार्थ**—तदनु—उसके बाद, सः—वह भरत) सौमित्रिणा—लक्ष्मण से, संससृजे—मिले, नम्रशिरसम्—झुके हुए सिर वाले, एनम्—इन (लक्ष्मण) को, उत्थाप्य—उठाकर, रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन—मेघनाद के प्रहारों से किये गये घावों से कठोर, अस्य—इनके (लक्ष्मण के), उरः स्थलेन—वक्ष-स्थल से, भुजमध्यं क्लिशयन् इव—मानो (अपनी छाती) को दबाते हुए, भृशम् आलिलिङ्ग—प्रगाढ़ आलिङ्गन किया ।

**भाषानुवाद**—उसके बाद भरत लक्ष्मण से मिले और (प्रणाम हेतु) झुके हुए सिर वाले इन लक्ष्मण को उठाकर मेघनाद के प्रहरों से किये गये घावों से कठोर इनके वक्षःस्थल से मानों (अपनी) छाती को दवाते हुए प्रगाढ़ आलिङ्गन किया ।

**संस्कृत-व्याख्या**—

कविकालिदासः भरतलक्ष्मणयोः सम्मिलनस्य वर्णनं करोति—

तदनु—तत्पश्चात्, सः—असौ, भरतः इत्यर्थः । सौमित्रिणा—लक्ष्मणेन, संससृजे—सङ्गतः, नम्रशिरसम्—नतमस्तकम्, एनम्—इमम्, लक्ष्मणम् इत्यर्थः । उत्थाप्य—उद्यम्य, रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन—उत्पन्नमेघना-दास्त्रक्षतकठोरेण, अस्य—एतस्य, लक्ष्मणस्य इत्यर्थः । उरःस्थलेन—वक्षः स्थलेन भुजमध्यम्—बाहुमध्यम्, वक्षःस्थलम् इति भावः । क्लिशयन् इव—पीडयन् इव, भृशम्—प्रगाढम्, आलिलिङ्ग, च—परिषस्वजे च ।

**टिप्पणी**—सौमित्रिणा—लक्ष्मण से । सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिः, सुमित्रा + इञ्, तेन ।

नम्रशिरसम्—नतमस्तक वाले को । नम्रं शिरो यस्य स नम्रशिराः (बहुव्रीहिसमास), तम् ।

रामज्ञयाहरिचमूपतयस्तदानीं
कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान् ।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः
शैलाधिरोहणसुखन्युपलेभिरे ते ।।७४।।

अन्वय—तदानीं रामाज्ञया हरिचमूपतयः मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रान् । आरुरुहुः । बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु ते शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे ।

शब्दार्थ—तदानीम्—उस समय, रामाज्ञया—राम की आज्ञा से, हरिचमूपतयः—वानरों के सेनापति, मनुष्यवपुः कृत्वा—मनुष्य-देह धारण कर, गजेन्द्रान् आरुरुहुः—गजराजों पर सवार हो गये, बहुधा—अनेक प्रकार से, मदवारिधाराः—मदजल की धाराओं को, क्षरत्सु—बहाते हुए, तेषु—उन (हाथियों) पर, ते—उन (सेनापतियों) ने शैलाधिरोहणसुखानि—पर्वतारोहण के सुख को, उपलेभिरे—प्राप्त किया ।

भाषानुवाद—उस समय राम की आज्ञा से वानरों के सेनापति मनुष्य-देह धारणकर गजराजों पर सवार हो गये । अनेक प्रकार से मदजल की धाराओं को बहाते हुए उन (हाथियों) पर उन्होंने पर्वतारोहण के सुख को प्राप्त किया ।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामस्याज्ञया वानरसेनापतयः मनुष्य शरीरं धृत्वा गजेन्द्रान् आरूढवन्तः' इत्यस्य वर्णनं कविनाकृतं श्लोकेऽस्मिन्—

तदानीम्—तस्मिन् काले, रामाज्ञया—रामादेशेन, हरिचमूपतयः—वानरसेनापतयः, मनुष्यवपुः—मनुजशरीरम्, कृत्वा—विधाय, गजेन्द्रान्—गजराजान्, आरुरुहुः—आरूढवन्तः बहुधा—अनेकशः, मदवारिधाराः—मद जलप्रवाहान्, क्षरत्सु—वर्षत्सु, तेषु—अमीषु, गजेन्द्रेषु इत्यर्थः । ते—अमी, हरिचमूपतय इति यावत्, शैलाधिरोहणसुखानि—पर्वतारोहणानन्दान्, उपलेभिरे—अनुबभूवुः ।

अत्र निदर्शनालङ्कारः ।

टिप्पणी—तदानीम्—उस समय । यह अव्यय है । तस्मिन् काले इति विग्रहे तद् + दानीम् ।

बहुधा—अनेक प्रकार से । बहु + धाच् ।

मदवारिधाराः—मदजल की धाराओं को । मदस्यवारि, तस्य धाराः (षष्ठी तत्पुरुष), ताः ।

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां
भेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः ।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयै-
र्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः ॥ ७५ ॥

अन्वय—सानुप्लवः क्षणदाचराणां प्रभुरपि दशरथप्रभवानुशिष्टः (सन्) रथान् भेजे । ये मायाविकल्परचितैः अपि तदीयैः स्यन्दनैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न ।

शब्दार्थ—सानुप्लवः—अनुचरों सहित क्षणदाचराणाम् प्रभुः अपि राक्षसों के प्रभु भी यानी विभीषण भी, दशरथप्रभवानुशिष्टः—दशरथ के पुत्र (राम) की आज्ञा पाकर, रथान् भेजे—रथों पर सवार हुए । ये—जो (रथ), मायाविकल्परचितैः—माया की कल्पना से बनाये गये भी, तदीयैः स्यन्दनैः—उन (राक्षसों) के रथों से, तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न—कृत्रिम रचना की शोभा के कारण तुलना में (कम) नहीं थे ।

भाषानुवाद—अनुचरों सहित राक्षसों के प्रभु भी यानी विभीषण भी दशरथ के पुत्र (राम) की आज्ञा पाकर (उन) रथों पर सवार हुए जो (रथ) माया की कल्पना से बनाये गये भी उन (राक्षसों) के रथों से कृत्रिम रचना की शोभा के कारण तुलना में (कम) नहीं थे ।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामस्याज्ञया सपरिजनः विभीषणोऽपि रथान् आरुरोह' इत्यस्य वर्णनं कविनाकृतं श्लोकेऽस्मिन्—

सानुप्लवः—सानुगः, क्षणदाचराणाम्—रात्रिञ्चराणाम्, प्रभुः अपि—स्वामी अपि, दशरथप्रभवानुशिष्टः—रामेणादिष्टः (सन्), रथान्—स्यन्दनान्, भेजे—आरुरोह, ये—रथाः इत्यर्थः। मायाविकल्परचितैः अपि—सङ्कल्पविशेषनिर्मितैः अपि, तदीयैः—विभीषणीयैः, स्यन्दनैः—रथैः, तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः—तुलिता समीकृता कृत्रिमा क्रियया निर्वृता भक्तीनां रचनाविशेषाणां शोभा कान्तिः येषां ते तथोक्ताः, न—नहि।

अत्र व्यतिरेकालङ्कारः।

टिप्पणी—सानुप्लवः—अनुचरों सहित। अनुप्लवन्ते इति अनुप्लवाः अनु+प्लु+अच्, तैः सह विद्यमानः इति सानुप्लवः (तेन सहेति बहुव्रीहि समासः)।

क्षणदाचराणाम्—राक्षसों का। क्षणदासु (रात्रिषु) चरन्ति इति क्षणदाचराः क्षणदा+चर्+ट, तेषाम्। भेजे—सेवन किया यानी बैठ गये। भज्+लिट् (प्रथम पुरुष एकवचन)। तदीयैः—उनके। तेषाम् इमे इति तदीयाः तद्+छ+ईय, तैः।

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताक
मध्यास्त कामगति सावरजो विमानम्।
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्य
स्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम्॥७६॥

अन्वय—ततः रघुपतिः सावरजः विलसत्पताकं कामगति विमानं भूयः बुधबृहस्पतियोगदृश्यः तारापतिः दोषातनं तरलविद्युत् अभ्रबृन्दम् इव अध्यास्त।

शब्दार्थ—ततः—उसके वाद, रघुपतिः—राम, सावरजः—दोनों भाइयों (भरत और लक्ष्मण) समेत, विलसत्पताकम्—शोभित पताका वाले, कामगति विमानम्—इच्छानुसार चलने वाले विमान पर, भूयः—पुनः, इव—जैसे, बुधबृहस्पतियोगदृश्यः—बुध और बृहस्पति के संयोग से दर्शनीय, तारापतिः—चन्द्रमा, दोषातनम्—रात्रि में, तरल विद्युत्—चंचल बिजली से युक्त, अभ्रवृन्दम् अध्यास्त—मेघसमूह पर बैठता है।

भाषानुवाद—उसके बाद राम दोनों भाइयों (भरत और लक्ष्मण) समेत शोभित पताका वाले, इच्छानुसार चलने वाले विमान पर पुनः उसी प्रकार बैठ गये जैसे बुध और बृहस्पति के संयोग से दर्शनीय चन्द्रमा रात्रि में चञ्चल बिजली से युक्त मेघसमूह पर बैठता है।

संस्कृत-व्याख्या—

'पुष्पकविमानारूढः रामः भरतलक्ष्मणयोः मध्ये बुधबृहस्पत्योः मध्ये स्थितः सुदर्शनचन्द्र इव शोभितवान्' इत्यस्य वर्णनं कविना कृतं श्लोके अस्मिन्—

ततः—तत्पश्चात्, रघुपतिः—रामः, सावरजः—अवरजैः अनुजैः सहितः, विलसत्पताकम्—विराजत्पताकम् कामगति—कामेन इच्छानुसारेण गति गमनं यस्य तादृशम्, विमानम्—यानम्, बुधबृहस्पतियोगदृश्यः—बुधबृहस्पतिभ्यां योगेन दृश्यः दर्शनीयः, तारापतिः—चन्द्रः, दोषातनम्—सान्ध्यम्, तरलविद्युत्—चञ्चलतडित्, अभ्रवृन्दम्—मेघसमूहम्, इव—यथा, अध्यास्त—अधिष्ठितवान्।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारो वर्तते।

टिप्पणी—सावरजः—छोटे भाइयों के साथ। अवरजाभ्यां सह सावरजः (तेन सहेति बहुव्रीहिसमासः)।

कामगति—(सवार) के इच्छानुसार चलने वाला। कामागतिः यस्य या कामेन गतिः यस्य तत् कामगति (बहुव्रीहि समास)। बुधबृहस्पतियोगदृश्यः—बुध और बृहस्पति के योग से दर्शनीय। बुधश्च बृहस्पतिश्च बुधबृहस्पती (द्वन्द्वसमास), तयोः योगः (षष्ठीतत्पुरुषसमास), तेन दृश्यः (तृतीय तत्पुरुष समास)।

अभ्रवृन्दम्—मेघसमूह अभ्राणां वृन्दम् अभ्रवृन्दम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वी
वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रा-
त्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे ॥ ७७ ॥

अन्वय—तत्र जगताम् ईश्वरेण प्रलयात् उर्वीम इव, वर्षात्ययेन अभ्रघनात् इन्दोः रुचमिव, रामेण दशकण्ठकृच्छ्रात् प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं मैथिलसुतां भरतो ववन्दे।

शब्दार्थ—तत्र—वहाँ (विमान में), जगताम् ईश्वरेण—संसार के स्वामी (आदिवराह) द्वारा, प्रलयात्—प्रलय से (बचायी गयी), उर्वीम् इव—पृथिवी की तरह, वर्षात्ययेन—वर्षा की समाप्ति यानी शरद्ऋतु के द्वारा, अभ्रघनात्—बादलों के समूह से (मुक्त की गयी), इन्दोः रुचमिव—चन्द्रच्छवि की तरह, रामेण—राम के द्वारा, दशकण्ठकृच्छ्रात्—रावण रूप सङ्कट से, प्रत्युद्धृताम्—उबारी गयी, धृतिमतीम्—धैर्यधारिणी, मैथिलसुताम्—सीता को, भरतः—भरत ने, ववन्दे—प्रणाम किया।

भावानुवाद—वहाँ (विमान में) संसार के स्वामी (आदिवराह) द्वारा प्रलय से (बचायी गई) पृथिवी की तरह और वर्षा की समाप्ति यानी शरद्ऋतु के द्वारा बादलों के समूह से (मुक्त की गयी) चन्द्रच्छवि की तरह राम के द्वारा रावण रूप सङ्कट से उबारी गयी धैर्यधारिणी सीता को भरत ने प्रणाम किया।

संस्कृत-व्याख्या—

'भरतः सीतां ववन्दे' इत्यस्य वर्णनं दृश्यताम् अस्मिन् श्लोके—

तत्र—पुष्पकविमाने, जगताम्—भुवनानाम्, ईश्वरेण—प्रभुणा आदिवराहेण, प्रलयात्—कल्पान्तात्, उर्वीम् इव—वसुधाम् इव, वर्षात्ययेन—शरदागमेन, अभ्रघनात्—मेघवृन्दात्, इन्दोः—हिमांशोः, रुचमिव—छविमिव, रामेण—दशरथपुत्रेण, दशकण्ठकृच्छ्रात्—रावणरूपसङ्कटात्, प्रत्युद्धृताम्—रक्षिताम्, धृतिमतीम्—धैर्यमतीम्, मैथिलसुताम्—जनकपुत्रीम् भरतः—कैकेयीसुतः, ववन्दे—प्रणतवान्।

अत्रोपमालङ्कारः।

टिप्पणी—जगताम् ईश्वरेण—लोकों के स्वामी (आदिवराह) द्वारा। ईश् (ऐश्वर्यं)+वरच् 'स्थेशभासपिसकसो वरच्' सूत्र से वरच् प्रत्यय=

ईश्वरः, तेन । वर्षात्ययेन---वर्षा का अन्त हो जिसमें ऐसे शरदागम से । वर्षाणाम् अत्ययो यस्मिन् स वर्षात्ययः---शरदृतुः, तेन ।

दशकण्ठकृच्छ्रात्---दस कण्ठ वाले रावण रूप सङ्कट से । दश कण्ठाः यस्य सदशकण्ठः (बहुव्रीहिसमास),

दशकण्ठ एव कृच्छ्रम् (मयूरव्यंसकादित्वात् रूपकरूप समासः), तस्मात् ।

ववन्दे---प्रणाम किया । वन्द् + लिट् (प्रथमपुरुष एकवचन) ।

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद्
वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः ।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधो-
रन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य ॥ ७८ ॥

अन्वय---लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं वन्द्यं तत् जनकात्मजायाः चरणयोः युगं ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं अस्य साधोः शिरश्च उभयं समेत्य अन्योन्यपावनम् अभूत् ।

शब्दार्थ---लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम्---रावण की प्रार्थना को ठुकरा देने से दृढव्रत वाला, वन्द्यम्--वन्दनीय, तत्---वह, जनकात्मजायाः---जनकपुत्री सीता का, चरणयोः युगम्---चरणयुगल, च---और, ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम्---ज्येष्ठ भ्राता राम के अनुसरण से जटायुक्त, अस्य साधोः---इस सज्जन (भरत) का, शिरः---सिर, उभयं समेत्य---दोनों मिलकर, अन्योन्यपावनम् अभूत्---एक दूसरे को पवित्र करने वाले हुए ।

भाषानुवाद---रावण की प्रार्थना को ठुकरा देने से दृढ़व्रत वाला (अतएव) वन्दनीय, जनकपुत्री सीता का वह चरणयुगल और ज्येष्ठ भ्राता के अनुसरण से जटायुक्त इस सज्जन (भरत) का सिर दोनों मिलकर एक दूसरे को पवित्र करने वाले हुए ।

संस्कृत-व्याख्या---

'वन्दनीयं सीतायाः चरणयुगलं तथा रामस्य भक्त्या जटाधारिणः भरतस्य शिरः मिलित्वा परस्परं पवित्रं कृतवान्' इत्यस्य वर्णनं श्लोकेऽस्मिन् कविना कृतम् ।

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम्—लङ्केश्वरस्य रावणस्य प्रणतीनां प्रार्थनानां भङ्गेन निरासेन दृढव्रतम् अखण्डित पातिव्रत्यम्, (अतएव) वन्द्यम्—वन्दनीयम्, तत्—अदः, जनकात्मजायाः—जनकसुतायाः, सीतायाः इत्यर्थः। चरणयोः—पादयोः, युगम्—युगलम्, ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम्—ज्येष्ठस्य रामस्य अनुवृत्त्या अनुसरणेन जटिलं जटायुक्तम्, अस्य—एतस्य, साधोः—महात्मनः, शिरः च—मस्तकं च, उभयम्—द्वयम्, समेत्य—मिलित्वा, अन्योन्यपावनम्—अन्योन्यस्य परस्परस्य पावनं शोधकम्, अभूत्—अभवत्।

टिप्पणी—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम्—लङ्कापति रावण की प्रार्थना को ठुकरा देने से दृढव्रत वाला। प्र + नम् + क्तिन् = प्रणतिः। लङ्केश्वरस्य प्रणति, तस्याः भङ्गः (षष्ठीतत्पुरुष), तेन दृढव्रतम् (सुप्सुपासमास)। दृढं व्रतं यस्य तत् दृढव्रतम् (बहुव्रीहि समास)।

ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम्—ज्येष्ठ भ्राता (राम) का अनुसरण करने के कारण या भक्ति के कारण जटा से युक्त। अतिशयेन वृद्धः इति ज्यष्ठः वृद्ध + इष्ठन्, वृद्ध को ज्यादेश। अनु + वृत् + क्तिन्—अनुवृत्तिः। जटाः सन्ति अस्मिन् इति जटिलम् जटा + इलच्। ज्येष्ठस्य अनुवृत्तिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तया जटिलम् (तृतीया तत्पुरुष समास)।

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा
काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण।
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः
साकेतोपवनमुदारमध्युवास ॥७९॥

अन्वय—आर्यः काकुत्स्थः प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितजवेन पुष्पकेण क्रोशार्धं गत्वा शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम् उदारं साकेतोपवनम् अध्युवास।

शब्दार्थ—आर्यः—पूज्य, काकुत्स्थः—ककुत्स्थवंशी (रामचन्द्र) ने, प्रकृति पुरःसरेण—प्रजा को आगे करके, स्तिमितजवेनपुष्पकेण—मन्दगति वाले पुष्पक विमान से, क्रोशार्धं गत्वा—आधाकोस जाकर, शत्रुघ्नप्रतिविहित-कार्यम्—शत्रुघ्न द्वारा सजाये गये तम्बूवाले, उदारं साकेतोपवनम्—विशाल अयोध्या के उपवन में, अध्युवास—निवास किया।

भावानुवाद—पूज्य ककुत्स्थवंशी रामचन्द्र ने प्रजा को आगे करके मन्दगतिवाले पुष्पक विमान से आधाकोस जाकर शत्रुघ्न द्वारा सजाये गये तम्बूवाले एवं विशाल अयोध्या के उपवन में निवास किया।

संस्कृत-व्याख्या—

'रामः अयोध्यायाः उपवने निवासं कृतवान्' इत्यस्य वर्णनं करोति कविः—

आर्यः—पूज्यः, काकुत्स्थः—काकुत्स्थकुलोत्पन्नः रामचन्द्रः, प्रकृतिपुरःसरेण—प्रकृतयः प्रजाः पुरः सराः अग्रेसराः यस्य तेन, स्तिमितजवेन—मन्दवेगेन, पुष्पकेण—पुष्पकविमानेन, क्रोशार्धम्—अर्धक्रोशम्, गत्वा—गमनं कृत्वा चलित्वा वा, शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम्—शत्रुघ्नेन प्रतिविहिताः सज्जिताः उपकार्याः पटभवनानि यस्मिन् तत् उदारम्—विशालम्, साकेतोपवनम्—अयोध्यायाः उद्यानम्, अध्युवास—अधितस्थौ।

टिप्पणी—आर्यः—पूज्य। अर्तुं योग्यः, आर्यः। यहाँ ऋ धातु में 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय हुआ है।

काकुत्स्थः—ककुत्स्थ-वंश में उत्पन्न। ककुदि तिष्ठति इति ककुत्स्थः ककुद्+स्था+क। एक पौराणिक कथा है—एक बार सूर्यवंशी राजा परंजय देवासुर-संग्राम में इन्द्र के सहायतार्थ गये थे। वहाँ पहुँचकर आवश्यकता के अनुसार इन्द्र ने साँड़ का रूप धारण किया और उसके ककुद् (डिल्ले) पर आरूढ़ होकर परंजय ने राक्षसों का संहार किया।

क्रोशार्धम्—आधाकोस। क्रोशस्य अर्धः क्रोशार्धः (षष्ठी तत्पुरुष), तम्। उदारम्—विशाल। उत्कृष्टम् आसमन्तात् राति इति उदारम्, उद्+आ+रा+क।

७९वाँ श्लोक 'प्रहर्षिणी' छन्द में निबद्ध है। इसका लक्षण है—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।' अर्थात् जिसके प्रत्येक पाद में मगण, नगण, जगण, रगण और एक गुरु होता है तथा तीन और दस वर्णों पर यति होती है, वह 'प्रहर्षिणी' छन्द कहलाता है।

**प्रश्न—रघुवंश त्रयोदश सर्ग का सारांश लिखें।**

(ललित ना० मिश्र विश्वविद्यालय, १९८६)

उत्तर—महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंश' एक महाकाव्य है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार कहा है—"सर्गबन्धो महाकाव्यं........।" उन्नीस सर्गों में निवद्ध इस काव्य में प्रायः उन्नीस राजाओं का वर्णन है। रघु के प्रताप एवं दानशीलता का वर्णन मानव के अन्तःकरण को बरबस खींच लेता है। इसी कारण से उक्त काव्य का नाम 'रघुवंश' पड़ा। राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक सबका काव्यात्मक इतिवृत्त उक्त काव्य में वर्णित है।

प्रथम सर्ग में राजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना के लिए जाते हैं। द्वितीय सर्ग में नन्दिनी की सेवा एवं पुत्र-प्राप्ति का वरदान वर्णित है और तृतीय सर्ग में रघु का जन्म, नामकरण, विद्याध्ययन एवं पराक्रम का वर्णन बड़ी कुशलता से किया गया है। चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय और पञ्चम सर्ग में दानशीलता का महत्त्वपूर्ण वर्णन है। षष्ठ सर्ग में इन्दुमती-स्वयंवर वर्णित है और सप्तम सर्ग में इन्दुमती-स्वयंवर में आये हुए राजाओं के साथ अज का युद्ध-वर्णन है। अष्टम सर्ग में अज का सिंहासनारोहण, दशरथ-जन्म, इन्दुमती-वियोग, अज-विलाप एवं शरीर के परित्याग का वर्णन है। नवम सर्ग में दशरथ का आखेट-वर्णन एवं दशम से पञ्चदश सर्ग तक राम-कथा का वर्णन है। शेष एकोनविंश सर्ग तक राम-पुत्र कुश से लेकर अग्नि वर्ण तक के राजाओं का सर्वोत्कृष्ट वर्णन किया गया है।

'रघुवंश' महाकाव्य के उन्नीस सर्गों में त्रयोदश सर्ग का स्थान महत्त्वपूर्ण है। भगवान् राम रावण का वध करके लङ्का से लौटते हुए अपनी सीता के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या आ रहे थे। यात्रा के समय उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों के अत्यन्त सजीव एवं चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत किये हैं। भगवान् राम सीता को उन मनोरम दृश्यों के सौन्दर्य का अवलोकन करने को कहते हैं कि हे सीते ! फेन से भरे इस समुद्र को देखो, जिसे मेरे द्वारा निर्मित पुल ने मलय-पर्वत तक दो भागों में वैसे ही बाँट दिया है जैसे सुन्दर तारों से भरे हुए शरद् ऋतु के खुले आकाश को आकाश गङ्गा दो भागों में बाँट देती है। इसे मेरे पूर्वज राजा सगर के पुत्रों ने यज्ञिय अश्व की खोज करते समय खोदा था। इसमें अनेक रत्न पाये जाते हैं। अपने शत्रु वडवानल को भी अपनी गोद में पालता है। सुखकारी प्रकाश-

वाला चन्द्रमा भी इसी में से उत्पन्न हुआ है। यह अनेक रूपों को धारण करता है। यह इतना बड़ा है कि दसों दिशाओं में दूर तक फैला हुआ है। जैसे भगवान् विष्णु के विषय में नहीं कहा जा सकता है कि वे ऐसे और इतने बड़े हैं वैसे ही इसके विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता है कि यह ऐसा है इतना बड़ा है। भगवान् विष्णु प्रलयकाल में तीनों लोकों को एकत्र कर इसी समुद्र में शयन करते हैं और इनकी नाभि से निःसृत कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा जी हमेशा इनके गुणों को गाया करते हैं। इन्द्र के भय से सैकड़ों पर्वत इसमें छिपे हुए हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में जब भगवान् वराह पृथिवी को पाताल से ले जा रहे थे तब उस समय प्रलय से बढ़ा हुआ इसका निर्मल जल क्षण भर के लिए उनका घूँघट बन गया था। सीते! अन्य जन केवल प्रियतमाओं का अधर पान करते हैं, अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते। पर, समुद्र इस बात में भी औरों से बढ़कर है, क्योंकि जब नदियाँ ढीठ होकर चुम्बन हेतु अपना मुख इसके सामने बढ़ाती हैं तब यह बड़ी चतुराई से उन्हे तरङ्ग-रूपी अधर का पान कराता है और उनके अधर का स्वयं पान करता है। इसके तट पर तरङ्ग सदृश दिखाई देने वाले ये सर्प हैं जो तट का पवन पान करने के लिए बाहर निकल आये हैं। पर, जब सूर्य की किरणों से इनके मणि चमक जाते हैं तब ये पहचान में आ जाते हैं। लहरों की झोंक में तुम्हारे अधर-सदृश प्रवाल की चट्टान से टकरा जाने से इन जीवित शङ्खों के मुँह छिद्र गये हैं और उस पीड़ा से ये बेचारे बड़ी कठिनाई से पीछे हट रहे हैं। हे सीते! वह देखो, काले-काले बादल समुद्र का जल लेने आये हैं और समुद्र की भँवर के साथ-साथ बड़ी तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं। इस समय यह समुद्र ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों मन्दराचल फिर इसे मथ रहा हो। समुद्र के तट पर तमाल और ताली के नीले जंगल शोभित हो रहे हैं। बालू पर सीपों के फैल जाने से मोती बिखरे पड़े हैं और फूलों के भार से सुपारी के पेड़ झुके खड़े हैं। हे मृगनयनी सीते! दूर निकल जाने से यह जंगलों से भरी हुई भूमि ऐसी दीख पड़ रही है मानों समुद्र में से अभी सहसा निकल पड़ी हो।

राम ने सीता से विमान के वेग के विषय में कहा कि हे सीते! यह विमान मेरे मन के अनुसार चल रहा है। कभी देवताओं के मार्ग से, कभी बादलों के मार्ग से और कभी पक्षियों के मार्ग से उड़ने लगता है। जब तुम खेल-खेल में अपना हाथ विमान से बाहर निकाल कर बादल को छू लेती हो तब मणिबन्ध के चारों ओर बिजली कौंध जाती है। उस समय ऐसा मालूम होता है मानों बादल तुम्हारे हाथ में दूसरा कंगन पहना रहे हो।

यह वही स्थान है जहाँ रावण आदि राक्षसों के मारे जाने की बात सुनकर मुनि लोग नयी कुटिया बना-बना कर तपस्या करते हैं। तुम्हें ढूंढ़ते हुए मैंने यहीं तुम्हारा एक नूपुर गिरा पाया था।

उसके बाद रामने सीता से अपने विरह-दुःख का वर्णन करते हुए कहा —सीते ! तुम्हें रावण जिस मार्ग से ले जा रहा था, उस मार्ग को लताएँ मुझे तुम्हारे जाने का मार्ग बताना चाहती थीं। पर, बोलने में असमर्थ उन्होंने अपनी पत्तों वाली डालियों को उधर झुकाकर तुम्हारे मार्ग को सूचित किया था। तुम्हारे वियोग में मैं ऐसा पागल हो गया था कि एक दिन स्तन के समान गुच्छों वाली इस पतली अशोक लता को मैंने यह समझकर गले लगाना चाहा था कि तुम ही हो। जैसे ही मैं गले लगाने चला तो मेरा यह पागलपन देखकर रोते हुए लक्ष्मण ने वहाँ से मुझे हटा लिया।

तत्पश्चात् राम ने गोदावरी नदी और पञ्चवटी का दृश्य स्मरण करके सीता से उसके विषय में बताया। सीते ! मैं पञ्चवटी में गोदावरी के समीप एकान्त में बेत की झोपड़ी में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया करता था और इसकी ठंढी वायु मेरे आखेट की थकावट मिटाया करती थी।

तदुपरान्त रामने सीता को अगस्त्य ऋषि का आश्रम दिखाया। इतना ही नहीं, शातकर्णिमुनि और सुतीक्ष्णमुनि का भी आश्रम दिखाया। शरणागत की रक्षा करने वाले अग्निहोत्री शरभङ्ग मुनि के आश्रम का परिचय सीता को दिया। रामने सीता से कहा कि शरभङ्ग मुनि ने बहुत दिनों तक अग्नि को समिधा से तृप्त कर अन्त में अपना पवित्र शरीर भी उसमें हवन कर दिया था।

राम ने चित्रकूट से प्रस्थान करके प्रयाग पहुँचने पर गङ्गा-यमुना के सङ्गम का रुचिकर वर्णन किया। उन्होंने सीता से कहा—"हे सीते ! गङ्गा-यमुना के सङ्गम में जो स्नान करके पवित्र होते हैं वे तत्त्वज्ञानी न होने पर भी संसार के बन्धनों से छूट जाते हैं।" सरयूनदी के पास विमान के आने पर उन्होंने अयोध्या नगरी और सरयूनदी का वर्णन किया। उन्होंने सीता से कहा कि जैसे प्रकृति से बुद्धि उत्पन्न हुई है वैसे ही यह सरयूनदी भी उस मानसरोवर से निकली है। यह नदी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी अयोध्या से लगी बहती है। इसके तट पर यत्र-तत्र यज्ञों के खम्भे गड़े हुए हैं, जिनमें बांध कर पशुओं की बलि दी जाती थी। अश्वमेध यज्ञ करके अन्त में सूर्यवंशी राजाओं ने जो इसमें स्नान किया है उससे इसका जल

पवित्र हो गया है। पुनश्च रामने सीता से कहा—"लाल सन्ध्या के समान धूलि पृथिवीतल से उड़ती दिखाई पड़ रही है। मैं समझता हूँ कि हनुमान जी से मेरे आने का समाचार सुनकर भरत जी सेना लेकर मेरी अगवानी के लिए आ रहे हैं।"

तत्पश्चात् विमान नीचे उतर आया। गुरु वशिष्ट को आगे करके आते हुए भरत आदि दिखाई पड़े। सभी एक दूसरे से मिलकर प्रसन्न हुए। उसके बाद रामने अयोध्या के उस उपवन में डेरा डाला, जिसे पहले से ही शत्रुघ्न ने अच्छी तरह सजा दिया था।

**प्रश्न—रघुवंश त्रयोदश सर्ग के प्रकृति-चित्रण पर प्रकाश डालें।**

उत्तर—साहित्य प्रेमियों ने विश्व के विशाल साहित्य में शेक्सपीयर को अन्तर्जगत् का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार माना है तो कालिदास को अन्तः एवं वाह्य दोनों का। महाकवि कालिदास के जो वाह्य एवं अन्तर्जगत् का प्रकृति-वर्णन हुआ है वह साहित्य-जगत् में मूर्धन्य है। इसमें कल्पना और यथार्थ दोनों का समन्वय है। इसलिए इनके प्रकृति-वर्णनों में एक ओर तो उद्दीपन का रूप प्रकटित हुआ है तो दूसरी ओर आलम्बन का।

इनका प्रकृति-वर्णन सजीवता, भव्यता तथा स्वाभाविकता का परिचायक हैं। इन्होंने प्रकृति को मनुष्य-जीवन से भिन्न नहीं माना है। उनके अन्तःकरण में एक दूसरे का पूरक है।

कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तल' तो प्रकृति का क्रीडास्थल है, जहाँ सहृदयों का अन्तःकरण सदा रमा रहता है। देखिए—

सहकार वृक्ष शकुन्तला की समीपता से लतासनाथ सा दीख पड़ता है—"त्वया समीपस्थितया लतासनाथ इव अयं चूतवृक्षः प्रतिभाति।" वे नवमल्लिका एवं सहकार में वर-वधू का सम्बन्ध पाते हैं—"इयं स्वयं वरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमल्लिका।" इन कथनों से स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि कालिदास ने वाह्य प्रकृति का अन्तःप्रकृति के साथ मानवीकरण किया है।

शकुन्तला मानों साक्षात् प्रकृति की कन्या है। तपोवन के सुरम्य वातावरण में ललिता-पलिता शकुन्तला जब आश्रम के विटपों को सींचती हुई नजर आती है तो ऐसा मालूम होता है कि तरुओं पर स्नेह-वर्षण हो रहा हो। इतना ही नहीं, वे मानों सगे-कुटुम्बी ही हों। वृक्षों की अनुरागपूर्वक सेवा करने वाली कण्व-ललिता शकुन्तला सदा तपोवन की लताओं का एका-

ग्रचित हो निरीक्षण करती है और यह ध्यान रखती है कि किन् लताओं में कब स्तवक प्रस्फुटित हुए हैं और कब मञ्जरियाँ मञ्जरित हुई हैं ?

कालिदास की दृष्टि में प्रकृति जड़ पदार्थ नहीं है। उनकी दृष्टि में जिस प्रकार मनुष्य प्रेम के कारण एक दूसरे को सुख-दुःख में साथ देते हैं उसी प्रकार प्रकृति भी साथ देती है। शकुन्तला की विदाई के समय तपोवन के तरु सब अनेक प्रकार के आभूषण देकर कण्वऋषि की सहायता मे हाथ बाँटते हैं।

यह श्लोक दर्शनीय है—

> क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणामाङ्गल्यमाविष्कृतं
> निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
> अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै—
> र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥

शकुन्तला वनदेवी की दुलारी पुत्री है। उसका स्नेह मृगों, पशु-पक्षियों के प्रति प्रगाढ़ है। जब शकुन्तला पति गृह जाने लगती है तब उस समय समस्त तपोवन विरहाकुल हो उठता है—

> उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
> अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥

पवन से दोलित तरु-पल्लवों को देखकर दीप-शिखा कालिदास को ऐसा भान होता है कि मानो आम्रवृक्ष शकुन्तला को बुलाने का सैन कर रहा हो —"एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिः किमपि व्याहरतीव मां चूतवृक्षः।"

इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य का प्रकृति के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित हुआ है। इस तरह हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास ने मानव तथा प्रकृति दोनों की अनुपम एकरसता दिखलाकर प्रकृति के अभ्यन्तर स्फुरित होने वाले अन्तःकरण को अच्छी तरह पहचाना है।

महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' काव्य में भी प्रकृति का जो चित्र उपस्थित किया है वह देखने को बनता है। जितना वर्षा ऋतु का स्निग्ध, हृदयग्राही एवं हृदयस्पर्शी चित्रण उक्त काव्य में किया जाता है उतना अन्य स्थान पर प्राप्त नहीं होता है। कहीं नवीन जुते खेतों से सोंधी गन्ध उड़ रही है, कहीं पर केतकीपुष्प के पराग से उपवन-प्रदेश सुरभित हो रहा है, कहीं हरे-पीले कदम्ब के फूलों पर भौंरे मँडरा रहे हैं, कहीं पर दलदलों में नयी फूली हुई कन्दली की पत्तियों को चरते हुए मृग दीख रहे हैं तो कहीं मयूर मत्त होकर नाच रहे हैं।

कवि ने मानसरोवर की ओर जाते हुए राजहंसों का बड़ा ही कमनीय वर्णन किया है।

उसकी छटा दर्शनीय है—

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आकैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः॥

यक्ष ने मेघ से कहा—"तुम्हारे जिस गर्जन से कुकुरमुत्ते निकल आते हैं और वसुन्धरा उपजाऊ हो जाती है, वही कानों को प्रिय लगने वाला तुम्हारा गर्जन सुनकर, मानसरोवर जाने के लिए उतावले राजहंस अपनी चोंचों में कमल की डंठल लिए कैलासपर्वत तक तुम्हारे साथ-साथ आकाश में उड़ते हुए जायेंगे।"

मेघ विरही यक्ष का संदेश लेकर जब चलता है तब उस समय कभी श्रीकृष्ण की तरह शोभा धारण करता है तो कभी सन्ध्याकालिक आभा प्रकट होने पर नवीन जपा पुष्प के सदृश लालिमा धारण करता है।

प्रकृति विरहातुर यक्ष की करुणा दशा को देखकर अपनी संवेदना प्रकट करती है। जब यक्ष स्वप्न की दुनिया में विचरण करता है तो उसे प्रियतमा दीख पड़ती है। बेचारा यक्ष अपनी प्रियतमा का आलिङ्गन करने के लिए जब हाथ फैलाता है तब उस समय प्रियतमा को न पाकर आठ-आठ आँसू बहाता है। यक्ष की उस दशा को देखकर वनदेवियाँ भी मुक्ता रूप अश्रु की बड़ी-बड़ी बून्दें टपकती हैं।

यह श्लोक कितना चित्ताकर्षक है।

देखिए—

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति॥

विरही यक्ष अपनी प्रियतमा के बाह्य एवं अन्तःसौन्दर्य का सुकोमल तथा करुणामय चित्र प्रस्तुत करते हुए मेघ से करता है—

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥

"अपने सहचर से वियुक्त चकवी के समान अकेली रहने वाली और मितभाषिणी उस सुन्दरी को देखकर ही तुम समझ लोगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है। विरह के कठोर दिन बड़ी उतावली से बिताते-बिताते उसका रूप भी बदल गया होगा और उसे देखकर तुम्हें भ्रम हो सकता है कि यह कोई बाला है या तुषार से आहत कोई कमलिनी है।"

महाकवि कालिदास ने यक्ष एवं उसकी कान्ता की विरह-दशा का वर्णन कर अन्तःप्रकृति का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। वस्तुतः 'मेघदूत' विरह पीड़ित उत्कण्ठित चित्र की मर्म भरी निःश्वास है, इसमें तनिक भी संदेह की झलक नहीं।

महाकवि कालिदास का प्रकृति-वर्णन यहीं तक समाप्त नहीं होता। 'रघुवंश' की ओर भी जरा नजर उठाकर देखिए।

'रघुवंश' एक महाकाव्य है, जिसमें प्रकृति-चित्रण का विशिष्ट स्थान है। प्राकृतिक दृश्यों के स्वाभाविक एवं मनोहारी चित्रण तो उक्त काव्य में भरे पड़े हैं। 'रघुवंश' के प्रथम सर्ग में ही तपोवन का यह मञ्जुल एवं पावन चित्र सहृदयों के अन्तःकरण को बरबस आकृष्ट कर लेता है—

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः॥

राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचकर देखते हैं कि सन्ध्या के अग्निहोत्र के लिए बहुत से तपस्वी हाथ में समिधा, कुश और फल लिए दूसरे जंगल से लौट रहे हैं।

उक्त काव्य में इसी प्रकार के प्रकृति के उत्तम वर्णन आद्यन्त भरे पड़े हैं। नवम सर्ग में बसन्त के वर्णन के अन्तर्गत कालिदास ने पवन से दोलित लता के गत्यात्मक सौन्दर्य का चित्रोपम वर्णन किया है।

यह श्लोक हृदयावर्जक है।
देखिए—

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥

"वन के किनारे बढ़ी हुई लताएं ऐसी सजीव-सी जान पड़ती थी मानों कानों को सुख देने वाले भौंरों की गुञ्जार ही उनके गीत हों, खिले हुए कोमल फूल ही उनकी हँसी के दाँत हों और पवन से हिली हुई शाखाओं वाले हाथों से वे अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखा रही हों।"

'रघुवंश' में महाकाव्योचित प्रकृति के विविध दृश्यों के मनोरम-चित्रण मिलते हैं। पञ्चम सर्ग के प्रभात-वर्णन के श्लोक अतीव उत्कृष्ट एवं प्रभावोत्पादक हैं।

कवि ने पञ्चमसर्ग में प्रभात का वर्णन कर सहृदयों को नव पैगाम प्रदान किया है।

यह श्लोक दर्शनीय है—

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिका विशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाऽधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्॥

सूतों के पुत्र अज को जगाते हुए कहते हैं—"हार के श्वेत मोतियों के सदृश निर्मल ओस के कण वृक्षों के लाल-लाल पत्तो पर गिरकर वैसे ही शोभित हो रहे हैं जैसे तुम्हारे हँसने के समय तुम्हारे लाल-लाल अधरों पर पड़ी हुई तुम्हारे दाँतों की चमक शोभती है।"

कवि ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में भगवान् राम और सीता के लङ्का से अयोध्या तक पुष्पक विमान में यात्रा के समय प्राकृतिक दृश्यों के अत्यन्त सजीव एवं चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत किये हैं। राम उन मनोरम दृश्यों के सौन्दर्य का अवलोकन करने के लिए सीता से कहते हैं—'हे निर्दोष अङ्गों वाली सीते! जरा गङ्गा और यमुना के संगम को तो निहारो। यमुना की श्यामल तरङ्गों से मिलता हुआ गङ्गा का प्रवाह कितना सुन्दर प्रतीत होता है—कहीं तो ऐसा मालूम पड़ता है कि श्वेत कमलों की माला में नील-कमल बीच-बीच में गूँथे हों। कहीं साँवले रग के हंसी से मिले हुए प्रिय मानसरोवर वाले राजहंसों की पंक्ति के सदृश और कहीं पृथिवी पर चन्दन से रचित शृङ्गार रचना में काले अगर से की गयी पत्र-रचना के सदृश गङ्गा-यमुना के संगम का मनोहर दृश्य शोभित हो रहा है।"

सीता के हाथ से स्पर्श किए गए मेघ की शोभा का वर्णन कितना चित्ताकर्षक है।

देखिए—

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते॥

राम ने सीता से कहा—"हे कोप करने वाली सीते! जब तुम खेल-

खेल में अपना हाथ विमान से बाहर निकालकर मेघ को छू लेती हो तब तुम्हारे मणिबन्धन के चारों ओर बिजली कौंध जाती है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में प्राकृतिक दृश्यों के मध्य शृङ्गारकता का आरोप किया है। त्रयोदश सर्ग में राम और सीता आदि विमान से अयोध्या लौट रहे हैं। राम समुद्र और नदियों के संगम का वर्णन सागर में नायक और नदियों में नायिकाओं का आरोप करते हुए प्रस्तुत करते हैं—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्सौ पाययते च सिन्धूः॥

"दूसरे लोग केवल स्त्रियों का अधरपान करते हैं, अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते। पर, समुद्र इस बात में भी औरों से बढ़कर है, क्योंकि जब नदियाँ ढीठ होकर चुम्बन के लिए अपना मुख इसके सामने बढ़ाती हैं तब यह बड़ी चतुराई से अपना तरङ्ग रूप अधर उन्हें पिलाता और उनका अधर स्वयं पीता है।"

'रघुवंश' का तेरहवाँ सर्ग प्रकृति का क्रीड़ास्थल है। इस सर्ग में समुद्र का विशद वर्णन है। प्रायः समस्त वर्णन ही आकाश से समुद्र और वनस्थली का हुआ है। कवि ने गगन-मार्ग से जाते हुए विमान पर बैठे राम द्वारा वह वर्णन सीता के प्रति कराया है। विमान वेग से चला जा रहा है और राम नीचे की सब जगहें विशेष कर वह जहाँ वन-प्रवास में वे सीता के साथ अकेले या विरही के रूप में रहे थे, बताते जा रहे हैं।

विमान के एक भाग में राम और सीता बैठे हैं। मार्ग में जो प्राकृतिक स्थल दीख पड़ते हैं, उनका राम बड़ी भावुकता से वर्णन करते चलते हैं। उक्त सर्ग में यात्रा के व्याज से समुद्र, नदी, वन, पर्वत और सरोवर आदि का वर्णन बड़ा ही चित्ताकर्षक हुआ है।

यह श्लोक दर्शनीय है—

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते॥

"लोकों का संहार कर प्रलय काल में योगनिद्रा को ग्रहण करने वाले तथा नाभि से उत्पन्न कमल पर आसीन प्रथम ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाते हुए परम पुरुष भगवान् विष्णु इसी समुद्र में शयन करते हैं।"

त्रयोदश सर्ग में महाकवि कालिदास ने समुद्र-तट का वर्णन कितना सुन्दर किया है। देखिए—

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ॥

"दूर होने से लौहचक्र के समान बहुत पतला और ताड़ तथा तमाल आदि वृक्षों के कारण नीला दीख पड़ने वाला समुद्रतट ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे चक्र की धार पर मुर्चा जम गया हो।"

राम सपरिवार समुद्र, समुद्र-तट, दण्डकवन, माल्यवान पर्वत, गोदावरी, पञ्चवटी, अगस्त्यमुनि का आश्रम, सुतीक्ष्ण आश्रम, शरभङ्गाश्रम, चित्रकूटपर्वत, अत्रिमुनि के तपोवन, प्रयाग, शृङ्गवेरपुर और सरयूनदी के ऊपर होते हुए विमान आकाश से नीचे उतर आया। सुग्रीव के हाथों के सहारे स्फटिकमणियों से खचित सीढ़ियों से राम विमान से उतर पड़े। सर्वप्रथम राम ने गुरुवशिष्ठ को प्रणाम किया। उसके बाद आँखों में आँसू भर कर भरत को छाती से लगा लिया। अन्त में भरत तथा अयोध्या की जनता उनका स्वागत कर उन्हें सुन्दर उपवन में ठहराती है।

महाकवि कालिदास ने प्राकृतिक रम्य स्थलों में अपनी वृत्ति को सुचारु रूपेण रमाया है। इसलिए उनके प्रकृति वर्णन इतने उत्कृष्ट हैं। पण्डित बलदेव उपाध्याय के शब्दों में—"कालिदास प्रकृति देवी के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को सावधानता से हृदयङ्गम किया था। इनके प्रकृति-वर्णन इतने सजीव हैं कि वर्णित वस्तु हमारे नेत्रों के सामने नाच उठती है। वाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करना तथा उनका मार्मिक अश ग्रहण करना कालिदास की महती विशेषता है। मनुष्य तथा प्रकृति—दोनों का मञ्जुल सम्पर्क तथा अद्भुत एकरसता दिखलाकर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फुरित होने वाले हृदय को पहचाना है। भारतीय-प्राकृतिक वर्णनों में एक विचित्रता है। पाश्चात्य कवियों के वर्णन प्रायः आवरणहीन होते हैं। परन्तु, संस्कृत कवियों के वर्णन अलङ्कृत होते हैं—ये महाकवि प्रकृति को सुन्दर अलङ्कारों से सजाकर पाठकों के सामने लाते हैं। कालिदास के वर्णन नितान्त सूक्ष्म, सुन्दर तथा संश्लिष्ट रूप में होते हैं।"

**प्रश्न—'उपमा कालिदासस्य इस उक्ति की समीक्षा करें।**

उत्तर—भारत की पावन भूमि पर ही नहीं, बल्कि विश्व की विशाल वसुन्धरा पर कौन ऐसा संस्कृत-प्रेमी होगा, जिसने कविकुलगुरु कालिदास का नाम न सुना हो ? इनकी कीर्त्ति-कौमुदी भारतीयों के अन्तःकरण में ही

अपनी सरसता एवं आध्यात्मिकता से तृप्त करती है। महाकवि कालिदास सरस्वती की समुज्ज्वल रत्नमाला के मध्यरत्न हैं। इतना ही नहीं, ये लोकप्रिय हैं।

संस्कृत-साहित्य में कालिदास उपमा के लिए अतिशय प्रसिद्ध हैं। यह उक्ति सर्वविदित है—"उपमा कालिदासस्य"। इनके काव्य में उपमाओं की झड़ी लगी हुई है। ये उपमाएँ सुन्दर, सरल एवं स्वाभाविक हैं। इतना ही नहीं, इनकी उपमाओं में नवीन कल्पना की उड़ान है। नव झंकार है। मानव की हृत्तन्त्री को झंकृत करने की अद्‌भुत शक्ति है।

महाकविकालिदास सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति है। अतः उनकी उपमाएँ वर्ण्यवस्तु का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में दक्ष हैं।

स्वयंवर के समय श्यामवर्ण के पाण्ड्यराज के वर्णन-प्रसङ्ग में सुनन्दा ने इन्दुमती से कहा—'ये महाराज नीलकमल सदृश श्याम हैं और तुम गोरोचना-सी गौरवर्णा। यदि तुमने इनसे विवाह कर लिया तो तुमदोनों की शोभा मेघ और उसमें चमकती विजली की शोभा के समान बढ़ जायेगी—

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु॥

(रघुवंशम्—६/६५)

राजा दिलीप वरुण के समान पराक्रमी थे।

गो-सेवा में संलग्न राजा दिलीप का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः॥

(रघुवंशम्—२/९)

अर्थात् पास में रहने वाले अनुचरवृन्द के छोड़ देने पर भी वरुण के समान प्रभावशाली उन राजा दिलीप के आस-पास के वृक्षों ने उन्मत्त पक्षियों के शब्दों द्वारा जय शब्द उच्चारण किया, ऐसा प्रतीत हो रहा था।

कवि ने बाल रघु की उपमा बाल चन्द्र से दी है—

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बाल चन्द्रमाः॥

(रघुवंशम्—३/२२)

अर्थात् वह रघु पूर्णसम्पत्तिशाली पिता दिलीप के प्रयत्न से मनोहर

अङ्ग और उपाङ्गों से सूर्य की किरणों के भीतर प्रवेश करने से बाल चन्द्रमा की तरह प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करने लगा।

गङ्गा और समुद्र का सम्बन्ध मधुर सम्बन्ध को द्योतित करता है।

जैसे गङ्गा की सभी धारायें समुद्र में गिरती है वैसे ही परमानन्द को प्राप्त करने के लिए सभी मार्ग विष्णु में ही हैं—

बहुधाऽप्यागमैर्भिन्ना: पन्थान: सिद्धिहेतव: ।
त्वय्येव निपतन्त्योधा जाह्नवीया इवार्णवे ॥

(रघुवंशम्—१०/२६)

समुद्र गम्भीरता का प्रतीक है।

जैसे समुद्र के हृदय में वडवानल प्रज्वलित है वैसे ही राजा दशरथ के हृदय में मुने के शाप की ज्वाला प्रज्वलित थी।

यह श्लोक दर्शनीय है—

प्राप्तानुग: सपदि शासनमस्य राजा
संपाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्त: ।
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं
शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशि: ॥

(रघुवंशम्—९/८२)

पर्वत कठोरभाव को व्यञ्जित करता है।

विश्वामित्र ने जनकजी ने कहा—"जैसे वज्र की शक्ति की परीक्षा पर्वत पर होती है वैसे ही राम की शक्ति की परीक्षा धनुष पर ही होगी।"

यह श्लोक दर्शनीय है—

प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम् ।
चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव ।

(रघुवंशम् ११/४१)

शिला कठोरता का प्रतीक।

कवि कालिदास ने ताडका के वक्षस्थल की उपमा शिला से दी है।

ताडका का वक्षस्थल शिला की तरह कठोर था।

यह श्लोक हृदयावर्जक है—

यच्चकार विवरं शिलाघने ताडकोरसि स समसायक: ।
अप्रविष्ट विषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत् ॥

(रघुवंशम्—११/१८)

गङ्गा का जल स्फटिक की तरह निर्मल है—

यह श्लोक देखिए—

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिक विशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छायाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥

(मेघदूतम्-पूर्वमेघ—५५)

कवि ने यक्षिणी के केश की उपमा मोर के पंख से दी है।

यक्षिणी के केश मोर के पंख के समान सुन्दर थे।

यह श्लोक दर्शनीय है—

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रू विलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥

(मेघदूतम्-उत्तरमेघ—४६)

कोकिला मधुरभाषिणी का प्रतीक है।

मालविका कोकिला की तरह मधुरभाषिणी थी।

यह श्लोक कितना चित्ताकर्षक है।

देखिए—

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसङ्गिन्यौ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते ॥

(मालविकाग्निमित्रम्—४/२)

मृग नेत्र सुन्दर नेत्र का प्रतीक है।

शकुन्तला की आँखें मृगनेत्र के समान सुन्दर थीं।

कवि ने उक्त उपमा को इस श्लोक में दर्शाया है—

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम् ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्—६/७)

मेघदूत के उत्तरमेघ में भी महाकविकालिदास ने उक्त उपमा को व्यञ्जित किया है। देखिए—

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥
(उत्तरमेघ—३७)

यक्ष ने मेघ से कहा—"यक्षिणी की आँखें मृगनेत्र के समान सुन्दर हैं ।

मृग नेत्र चञ्चलता को भी द्योतित करता है । पार्वती की आँखें मृग नेत्र की तरह चञ्चल थीं ।

यह श्लोक देखिए—

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।
य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥
(कुमारसंभवम्—५/३५)

भ्रमर श्यामवर्ण को द्योतित करता है ।

इन्दुमती के बाल भ्रमर की तरह काले-काले थे ।

अधोलिखित श्लोक देखिए—

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्त्तनशङ्कि मे मनः ॥
(रघुवंशम्—८/५३)

महाकवि कालिदास ने स्त्रियों के दाँत की उपमा मालती पुष्प से दी है ।

उन्होंने शरद्ऋतु के वर्णन प्रसङ्ग में कहा है—"स्त्रियों के दाँत मालती पुष्प के समान उजले-उजले थे ।"

यह श्लोक दर्शनीय है—

श्यामालताः कुसुमभारनतप्रवालाः स्त्रीणां हरन्ति धृतभूषण बाहुकान्ति ।
दन्तावभासविशदस्मितचन्द्रकान्तिं कङ्केलिपुष्परुचिरा नवमालती च ॥
(ऋतुसहारम्—३/१८)

पुरूरवा ने उर्वशी से कहा—"जैसे प्रातःकाल होने पर कमलिनी अपना मुख खोल देती है वैसे ही तुम भी अपनी बड़ी-बड़ी आँखें खोल दो ।"

उक्त उपमा को इस श्लोक में देखिए—

गतं भयं भीरु सुरारिसंभवं त्रिलोकरक्षीमहिमाहि पग्रिणः ।
तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पङ्कजम् ॥
(विक्रमोर्वशीयम्—१/६)

यमुना की लहरों से युक्त गङ्गा की उपमा काले सर्पों से विभूषित और भस्मरूप अङ्गराग से युक्त शिव के शरीर से दी गयी है—

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥
(रघुवंशम्—१३/५७)

अर्थात् यमुना की लहरों से गङ्गा काले सर्पों से विभूषित और भस्मरूपी अङ्गराग युक्त शिव के शरीर के समान शोभा पा रही है ।

कवि ने रावण के कष्ट से बचायी गयी सीता की उपमा मेघमुक्त चन्द्रच्छवि से दी है ।

भरत ने रावण के कष्ट से रक्षित मेघ रहित चन्द्रच्छवि के समान सीता को प्रणाम किया ।

यह श्लोक दर्शनीय है—

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीं
वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः ।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रा-
त्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे ॥ ७७ ॥
(रघुवंशम्—१३/७७)

पञ्चाप्सर नामक क्रीडा सरोवर की उपमा मेघों के बीच कुछ-कुछ दिखाई देने वाले चन्द्रमण्डल से दी गयी है—

एतन्मुनेर्मानिनि ! शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥ ३८ ॥
(रघुवंशम्—१३/३८)

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में लगभग तीन सौ से अधिक उपमाओं का प्रयोग किया है । इसके अन्तर्गत उपमा के सभी भेद—पूर्णोपमा, रशनोपमा आदि आये हैं । यों तो उपमा का प्रयोग सभी कवियों ने किया है । लेकिन, उपमाएँ जमती हैं तो कालिदास की ही । अतः यह उक्ति यथार्थ ही है—

उपमाकालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः ॥

डॉ० परशुराम गोडे महोदय ने कालिदास की उपमाओं का वर्गीकरण चौदह प्रकार से किया है ।

विषय-भेद के आधार पर कालिदास की उपमाओं का वर्गीकरण मुख्य-रूपेण चार प्रकार से किया जा सकता है—

१. दिव्य

२. पार्थिव

३. शास्त्रीय

४. भावात्मक

१. मारीच ने प्रणाम करती हुई शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहा—

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तलम्—७/१८)

अर्थात् तुम्हारा पति इन्द्र सदृश है, तुम्हारा पुत्र जयन्त यानी इन्द्र के पुत्र के समान है, तुम इन्द्राणी के समान होओ। इसके अतिरिक्त कोई अन्य आशीर्वाद तुम्हारे योग्य नहीं है।

नन्दिनी द्वारा रचित माया सिंह के प्रभाव से स्तम्भित भुजाओं वाले राजा दिलीप की दशा का वर्णन करते हुए कालिदास ने उसकी उपमा वज्र छोड़ने वाले इन्द्र से दी है—

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषु प्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः ॥
(रघुवंशम्—२/४२)

महाकविकालिदास ने रघुवंश के द्वितीय सर्ग में गर्भ धारण करती हुई सुदक्षिणा की उपमा चन्द्रमा धारण करने वाली द्यौ और भगवान् शिव का तेज धारण करने वाली गङ्गा से दी है—

अथनयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥
(रघुवंशम्—२/७५)

वशिष्ठ-आश्रम को जाते हुए सुदक्षिणा-राजा दिलीप की उपमा तुषार से निर्मुक्त हुए चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा से दी गयी है—

काऽप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥
(रघुवंशम्—१/४६)

२. कालिदास द्वारा प्रस्तुत अधिकांश उपमाएँ पार्थिव ही है । वे उपमाएँ विषय के अनुरूप और स्वाभाविक है ।

खिसकी हुई गङ्गा रूपी साड़ी वाली अलकापुरी कैलास पर्वत की गोद में उसी प्रकार सुशोभित हो रही है, जैसे—प्रियतम की गोद में कोई प्रियतमा ।

यह श्लोक देखिए—

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्त्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्टवा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥

(पूर्व मेघ—६७)

शरीर के कृश हो जाने के कारण आभूषण रहित, गर्भ के भार से अलसायी हुई सुदक्षिणा की उपमा कवि ने गिने जाने लायक तारों वाली प्रभातकल्पा रात्रि से दी है—

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥

(रघुवंशम्—३/२)

दिलीप और सुदक्षिणा के बीच नन्दिनी की उपमा दिन और रात के मध्य होने वाली सन्ध्या से दी गयी है ।

यह श्लोक कितना चित्ताकर्षक है ।

देखिए—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥

(रघुवंशम्—२/२०)

महाकवि कालिदास की उपमाएं केवल रमणीय ही नहीं, बल्कि यथार्थ भी हैं ।

यह श्लोक हृदयावर्जक है ।

देखिए—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीताय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

(रघुवंशम्—६/६७)

अर्थात् स्वयंवर के समय इन्दुमती जिस राजा को छोड़ती जाती है, उसके मुख पर निराशा की ऐसी कालिमा छा जाती है, जैसी राजमार्ग के उन महलों पर जिन्हें रात्रि के समय आगे बढ़ने वाली दीपशिखा पीछे छोड़ती चली जाती है।

यह उपमा-विधान सहृदयों को इतना भाया कि उन्होंने कालिदास को दीपशिखा की उपाधि ही दे डाली।

३. कालिदास द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ शास्त्रानुसारिणी भी हैं।

कवि ने राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा के नन्दिनी के पीछे जाने की उपमा श्रुति के अर्थ के पीछे स्मृति के अनुगमन से दी है—

तस्याः खुरन्यासपवित्र पांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्॥
(रघुवंशम्—२/२)

पार्वती और शिव की वागर्थ से उपमा यथार्थ ही है—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
(रघुवंशम्—१/१)

अर्थात् महाकवि कालिदास ने कहा कि मैं वाणी और अर्थ को वश में करने के लिए संसार के माता-पिता पार्वती और शिव को प्रणाम करता हूँ, जो शब्द और अर्थ के समान परस्पर मिले हुए एक रूप हैं।

बालि के स्थान पर सुग्रीव का राज्याभिषेक की उपमा धातु के स्थान पर आदेश से दी गयी है।

यह श्लोक कितना चित्ताकर्षक है।

देखिए—

स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत्॥
(रघुवंशम्—१२/५८)

अर्थात् राम ने बालि को मार कर धातु के स्थान पर आदेश के समान सुग्रीव को चिरकाल से अभिलषित उस बालि के स्थान पर रखा।

यहाँ व्याकरणानुसारिणी उपमा देखने को बनती है—

लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं यूयं किं बलवत्तरैः ।
अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः ॥

(कुमारसंभवम्—२/२७)

अर्थात् ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—"जैसे व्याकरण आदि शास्त्रों में किसी व्यापक नियम को अपवाद वाला नियम व्यर्थ कर देता है, वैसे ही क्या आप लोग भी किसी पराक्रमी शत्रु से अपना-अपना अधिकार लुटवा-बैठे हैं ।

यह भी उपमा व्याकरणशास्त्रानुसारिणी है—

स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया ।
ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः ॥

(रघुवंशम्—१५/७६)

जैसे स्वर और संस्कार के साथ गायत्री सूर्य के पास गयी वैसे ही लव और कुश के साथ सीता राम के पास गयी ।

४. कालिदास की रचनाओं में भावात्मक उपमाएँ भी परिलक्षित होती हैं । ये मूर्त वस्तु की अमूर्त भावों से उपमा देने में निष्णात दीख पड़ते हैं ।

यहाँ कवि ने शकुन्तला की उपमा मूर्तिमती सत्क्रिया से दी है—

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः
शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्—५/१५)

ध्यानस्थ मुनियों की उपमा वायु न चलने के कारण स्थिर वृक्षों से दी गयी है ।

यह श्लोक दर्शनीय है—

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्या ।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥

(रघुवंशम्—१३/५२)

यह श्लोक भी चित्ताकर्षक है ।

देखिए—

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् ।
जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम् ॥

(रघुवंशम्—१०/७०)

उक्त श्लोक में कवि कालिदास ने माता की गोद को सुशोभित करने वाले भरत की उपमा लक्ष्मी की शोभा बढ़ाने वाली विनय से दी है। सचमुच यह उपमा अच्छी बन पड़ी है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि कालिदास की उपमा में अनुपम छटा है। अन्य कवि इस दिशा में कालिदास की तरह सक्षम नहीं हो सके हैं। महाकवि भवभूति की उपमाएँ भी सर्वथा उपयुक्त हैं। पर, वे कठिन हैं और उनमें कालिदास की तरह सरलता तथा व्यञ्जकता का अभाव है।

किं बहुना ? कालिदास के उपमा-प्रयोग विशिष्ट अर्थ को ध्वनित करते हैं। सुधीजन भावों के अन्तस्तल में उतर कर अपने आपको खो बैठते हैं। ऐसी स्थिति में सहृदयों ने कालिदास की उपमाओं की जो मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, वह सर्वथा समीचीन है।



OUR USEFUL PUBLICATIONS

*IN*

SANSKRIT SERIES

*FOR*

B. A. Pass & Honours Students

Complete Help Books on

1. अभिज्ञान शकुन्तलम् (प्रेस)
2. नीतिशतमकम् (प्रेस)
3. मेघदूतम् (प्रेस)
4. किरातार्जुनीयम् (प्रेस)
5. शिशुपालवधम् (प्रेस)
6. रघुवंशम्
7. वैदिक व्याकरण
8. संस्कृत व्याकरण, रचना और निबन्ध (प्रेस)
9. महाविद्यालय संस्कृत अनुवाद

*For P. G Students*

10. व्याकरण महाभाष्यम्
11. संस्कृत महाकवियों से सम्बद्ध सूक्तियाँ



Rs. 9/-